खंड 5 – दृश्य संस्कृति

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

हिरन मीनार

साभार: Shashank Shekhar Sinha, ***Delhi, Agra, Fatehpur Sikri: Monuments, Cities and Connected Histories*****, Macmillan, New Delhi, 2021**

इकाई 13 वास्तुशिल्प*

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 अकबर के समय की वास्तुशिल्प योजनायें

13.2.1 संरचना और तकनीक

13.2.2 प्रमुख स्थापत्य के कार्य

13.3 जहांगीर के समय की स्थापत्य योजनायें

13.4 शाहजहाँ के काल की वास्तुशिल्प योजनायें

13.4.1 नवीन विशेषतायें

13.4.2 प्रसिद्ध स्मारक

13.5 मन्दिर निर्माण

13.6 सराय और पुल

13.7 औरंगजेब के समय का वास्तुशिल्प

13.7.1 मुख्य भवन

13.7.2 सफदर् जंग का मकबरा

13.8 सारांश

13.9 शब्दावली

13.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

13.0 उद्देश्य

भारत में सत्रहवीं शताब्दी के मध्य में मध्य एशिया और परशिया से लाई गई वास्तुकला की विधियों और स्वरूपों का भारत में प्रचलित शिल्प के साथ संलयन देखा गया। जिसके कारण भारत में वास्तुशिल्प के अत्यंत भव्य स्वरूप और योजनायें उभर कर सामने आई। नयी विशेषतायें और नये आकारों ने वास्तुशिल्प के क्षेत्र को मनोहारी बनाने में योगदान दिया। इसके अतिरिक्त, उत्तर भारत में, दिल्ली सल्तनत के नये तुर्की शासकों के तीन सौ साल लम्बे दौर में विशेषकर मंदिरों के बड़ी संख्या में तोड़े जाने के बाद, एक बार पुनः, खासकर मंदिर भवन निर्माण में भी, पहले के आकार और प्रकार में महत्वपूर्ण पुरुत्थान देखने को मिला। वास्तुशिल्प की यह गाथा, इस दौरान बहुदर्शी है, जिसमें मनोरंजक ऐतिहासिक विवरण हैं, जो प्रयोगात्मक अभियानों के हेर–फेर से भरा है, जिसमें महत्वाकांक्षी वास्तुकला की योजनायें, कट्टरता और विनाशकारी कृत्य, पुनरूत्थान और पुनः प्रवर्तन शामिल है।

*प्रो. रवीन्द्र कुमार, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप यह जान सकेंगे कि–

- मुगल वास्तुशिल्प में नये संरचनात्मक आकार उनकी विशेषतायें और विधियाँ क्या रही थीं, जिनका प्रयोग किया गया, जो अपनाई गईं?
- उस शासन–काल की प्रमुख वास्तुकला (स्थापत्य) की योजनायें कौन सी थीं?
- भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में मंदिर निर्माण की प्रक्रिया क्या रही?
- सार्वजनिक निर्माण में दो महत्वपूर्ण आकार और उनकी व्यापकता, सराय और पुल निर्माण क्या रही? और
- मुगल साम्राज्य के पतन के वर्षों में मुगल स्थापत्य–कला के विनष्ट होने के कारक क्या थे।

13.1 प्रस्तावना

भारत में तेरहवीं शताब्दी में ही स्थापत्य की नवीन शैली की नींव रखी जा चुकी थी। इसमें मेहराबों का उपयोग किया जाता था और इसकी सहायता से गुम्बदों और प्रवेश द्वार का निर्माण किया जाता था। मुगलों ने यह परम्परा जारी रखी और पूर्व–तुर्की तकनीक अर्थात् मेहराब का शहतीर के साथ सम्मिश्रण प्रस्तुत किया। इन सबके मिले–जुले रूप के कारण अपने आप में एक नये प्रकार की शैली विकसित हुई।

इस काल ने मंदिर निर्माण की विभिन्न क्षेत्रों में होने वाली क्रिया को देखा और महत्वपूर्ण सार्वजनिक भवनों के तेजी से बढ़ने, जिसमें सराय और पुल थे, जिससे यात्रा एवं आवागमन में और व्यापार करने में देश भर में सुविधा मिली। इस काल खंड ने मंदिरों को चुन–चुनकर विनष्ट किया जाना, तहस–नहस करना और उनको मस्जिदों में बदला जाना भी देखा जो बाद में इन कट्टरपंथियों के समाप्त हो जाने पर पुनर्जीवित हुए।

वास्तव में, मुगल स्थापत्य अकबर के समय से उभरना शुरू हुआ। उसने देशी और विदेशी तत्वों के मिले–जुले रूप को प्रश्रय किया। देशी कलाकारों को अकबर ने खासकर महत्व दिया। फतेहपुर सीकरी के भवन इसके उत्तम उदाहरण हैं।

अकबर के पुत्र जहांगीर ने भवन निर्माण में कोई खास रुचि नहीं दिखाई, परन्तु जहांगीर का पुत्र शाहजहां स्थापत्यगत कला का महान्तम संरक्षक था। भारत के कुछ बेहतरीन ऐतिहासिक भवनों का निर्माण उसी के शासनकाल में हुआ था। उसके काल में भवन निर्माण में लाल पत्थर का स्थान संगमरमर ने ले लिया और आंतरिक सजावट के लिए बहुमूल्य पत्थरों का इस्तेमाल किया जाने लगा। इसे पैट्राड्यूरा या पच्चीकारी के नाम से जाना जाता है। शाहजहां के काल में ही उभार वाले गुम्बदों और अनेक स्तरों वाली मेहराबों का प्रयोग शुरू हुआ जिससे इमारतों के दृश्य सौंदर्य में वृद्धि हुई।

औरंगजेब के शासनकाल में संसाधनों की कमी थी। औरंगजेब की मानसिकता अपने पिता से बिल्कुल भिन्न थी। इसका असर स्थापत्य शैली पर भी पड़ा। इस युग के भवनों में इस्तेमाल होने वाली वस्तुओं का स्तर सामान्य था और उसमें आडंबर का नामों निशान तक नहीं था।

इसके अतिरिक्त, उसका मंदिरों के प्रति धार्मिक विद्वेष, कट्टरता, प्रमुख धार्मिक हिन्दु तीर्थ स्थलों के प्रति चलायी गयी विध्वंसकारी सोची समझी मुहिम ने मध्यकालीन भारत की विशाल

स्तर पर निर्मित मंदिरों के भवनों की महत्वपूर्ण वास्तुशिल्प को हमेशा के लिये समाप्त कर दिया। हम नीचे दिये गये भागो में दिलचस्प विवरण प्रस्तुत करते हैं।

13.2 अकबर के समय की वास्तुशिल्प योजनायें

मुगल वास्तुकला का रचनात्मक काल अकबर का कार्यकाल रहा। गुंबद और मेहराब के घुमावदार तत्वों को स्थानीय शहतीर विधियों के साथ संविमीत करने के सुंदरतम उदाहरण यह काल खंड प्रस्तुत करता है। यह गाथा आरंभिक प्रयोगों और उनकी सफलतापूर्वक बाद की योजनाओं में प्रयोग किये जाने की स्थिति दिखाती है, जो आगरा के किले और फतेहुपर सीकरी में दिखाई दिया।

13.2.1 संरचना और तकनीक

अकबर के शासनकाल में स्थापत्य के क्षेत्र में देशी तकनीकों को बढ़ावा मिला और अन्य देशों के अनुभव का भी उपयोग किया गया। इस प्रकार अकबर के संरक्षण में पनपने वाली स्थापत्य शैली की निम्नलिखित विशेषताएं उल्लिखित की जा सकती हैं:

क) भवन निर्माण में मुख्य रूप से लाल बलुए पत्थर का उपयोग हुआ;

ख) शहतीरों का अधिकतम उपयोग;

ग) मेहराबों का संरचनात्मक स्वरूप की अपेक्षा अलंकरण के लिए प्रयोग;

घ) गुम्बद ''लोदी'' शैली में बनते रहे, कभी–कभी इसे खोखला बनाया जाता था, परन्तु तकनीकी तौर पर यह सही अर्थों में दोहरा गुम्बद नहीं होता था;

ड़) खम्भे का अग्रभाग बहुफलक युक्त होता था और इन खम्भों के शीर्ष पर ब्रैकेट या ताक बने होते थे; और

च) अंदरूनी हिस्से में अलंकरण के तौर पर स्पष्ट रूप में बड़ी–बड़ी नक्काशी तथा पच्चीकारी की जाती थी और उन्हें चमकीले रंगों से रंगा जाता था।

13.2.2 प्रमुख स्थापत्य के कार्य

अकबर के काल के शायद सबसे पहली इमारत हुमायूँ का मकबरा था (चित्र-1)। वस्तुतः यह इमारत मुगल स्थापत्य शैली के विकास की एक महत्वपूर्ण पहचान है। 1564 ई. में, हुमायूं की मृत्यु के बाद, उसकी पत्नी हमीदा बानों बेगम की देखरेख में इसका निर्माण आरंभ हुआ। इस भवन के स्थापत्य शिल्पी मिराक मिर्जा गियास थे। वे ईरान के रहने वाले थे। वे अपने साथ कुशल ईरानी कारीगर दिल्ली लाये थे। भवन निर्माण में उनकी तकनीक और योग्यता का पूर्णतः इस्तेमाल किया गया। इस प्रकार यह मकबरा भारत में ईरानी अवधारणा के आत्मसातीकरण का प्रतिनिधित्व करता है। सही अर्थों में हुमायूं का मकबरा अकबर के शासनकाल की इमारत है। परन्तु अपनी खासियतों के कारण इसे इस काल से अलग माना जाता है।

हुमायूं के मकबरे में पहली बार बागानों का उपयोग किया गया था और इसे लाल बलुए पत्थर के बनाये तोरणयुक्त चबूतरे पर स्थापित किया गया था। यह आकार में अष्टकोणीय है और एक ऊंचे गुम्बद से आच्छादित है जो वस्तुतः दोहरा गुम्बद है। इसमें दो आवरण हैं और दोनों आवरणों के बीच में जगह छोड़ दी गयी है। आंतरिक आवरण अंदरूनी हिस्से की छत का काम करता है और बाहरी आवरण इमारत के अनुपात में ऊपर की ओर शल्क कंद के समान

उभरा हुआ है। मकबरे के हर एक तरफ मध्य में एक द्वार मंडप है, जिसके साथ नुकीला मेहराब बना हुआ है। यह मुख्य कक्ष में जाने का रास्ता है। इस भवन के अंदर कई कक्ष बने हुए हैं। इनमें सबसे बड़ा कक्ष मध्य में है जिसमें सम्राट की कब्र है। प्रत्येक कोण पर बने छोटे कक्ष परिवार के अन्य सदस्यों की कब्रों के लिए बनाये गये हैं। प्रत्येक कक्ष अष्टकोणीय है और ये तिरछे रास्तों से जुड़े हुए हैं।

चित्र-1: हुमायूँ का मकबरा

साभार : Shashank Shekhar Sinha, *Delhi Agra, Fatehpur Sikri: Monuments, Cities and Connected Histories*, Macmillan, New Delhi, 2021.

हुमायूँ के मकबरे के बाद की, अकबर की भवन–निर्माण योजनाओं, को दो मुख्य समूहों में बांटा जा सकता है। पहले समूह में किलों का निर्माण और कुछ एक महल, जिनमें मुख्यतः आगरा, इलाहाबाद और लाहौर के हैं। दूसरे समूह में मुख्यतया फतेहपुर सीकरी में नई राजधानी के निर्माण का कार्य रखा जा सकता है।

अ) प्रथम चरण

आगरे के दुर्ग को वस्तुतः एक किले महल के रूप में विचार में कल्पित किया गया था। इसकी विशालकाय दीवारें और परकोटे किसी महान् सत्ता और शक्ति की याद दिलाते हैं। किले के भीतर, अकबर ने गुजरात और बंगाल शैली में कई इमारतें बनवायीं थीं। हालांकि, जहांगीरी महल को छोड़कर शाहजहां ने अन्य सभी संचनाओं को तुड़वाकर फिर से निर्मित करवाया था। आज किले का दिल्ली दरवाजा और जहांगीरी महल ही अकबर के काल के भवनों के एकमात्र प्रतिनिधि है।

चित्र-2: दिल्ली गेट–आगरा का किला

साभार: लेखक

आगरे के किले का दिल्ली दरवाजा (चित्र-2) संभवतः अकबर के आरंभिक स्थापत्यगत प्रयास का नमूना है। यह किले का मुख्य प्रवेश द्वार है। इस दरवाजे के स्थापत्य में नयापन है, जो भारत में भवन निर्माण कला के नये युग के आरंभ की सूचना देता है। इस दरवाजे की योजना सरल है। इसका विवरण इस प्रकार है:

- सामने की ओर मध्य में मेहराब पथ था और उसके दोनों ओर झुकी हुई अष्टकोणीय दीवारें थीं;
- पीछे की ओर तोरणयुक्त छत थी और जिसमें मंडप और कंगूरे बने हुए थे; और
- इसमें लाल बलुए पत्थर पर सफेद संगमरमर से अलंकरण किया गया था।

जहांगीरी महल (चित्र-3) का निर्माण अकबर ने करवाया था और यह लाल बलुए पत्थर से बने भवन का उत्कृष्ट नमूना है। अकबर द्वारा किले के भीतर निजी और घरेलू कार्य के लिए बनाये गये भवनों में केवल यही बचा हुआ है। यह हिंदू और इस्लामी भवन निर्माण पद्धति के मिले–जुले रूप का सुंदर नमूना है। इसमें विभिन्न कक्ष बने हुए हैं। पूर्व दिशा के अग्रभाग में प्रवेश द्वार है जो गुम्बदनुमा बड़े कक्ष की ओर जाता है, जिसकी अंदरूनी छत पर काफी नक्काशी की गयी है। इस कक्ष को पार करने के बाद एक मध्यवर्ती खुला आंगन मिलता है। इस आंगन की उत्तर दिशा में कई खंभों से बना एक कक्ष है, जिसकी छत को खंभों, कड़ियों और घुमावदार ताकों से सहारा दिया गया है। दक्षिण दिशा में भी इसी प्रकार का एक कक्ष है। हालांकि पूर्व दिशा में यह सामंजस्य कायम नहीं रखा जा सका है। इस ओर कई कक्ष हैं जो यमुना नदी की ओर बने एक गलियारे में खुलते हैं (चित्र-4)। पूरे भवन के निर्माण में मुख्य रूप से लाल पत्थर, कड़ी और ब्रैकेट या ताक का इस्तेमाल किया गया है, जो इसकी प्रमुख संरचनागत विशेषता को दर्शाती हैं।

चित्र-3: जहांगीरी महल – आगरा का किला

साभार: लेखक

चित्र-4: जहांगीरी महल – आगरा का किला
साभार : Shashank Shekhar Sinha, *Delhi Agra, Fatehpur Sikri: Monuments, Cities and Connected Histories*, Macmillan, New Delhi, 2021.

ख) दूसरा चरण

अकबर की स्थापत्यगत योजना के दूसरे चरण की शुरूआत सीकरी में साम्राज्य की नयी राजधानी के निर्माण के साथ होती है। यह आगरा से 40 किलोमीटर पश्चिम में स्थित है। नयी राजधानी का नाम फतेहपुर रखा गया। फतेहपुर सीकरी एक शहर है। इसका निर्माण इस तरीके से किया गया है कि सहन, दीवाने आम और जामा मस्जिद जैसे सार्वजनिक स्थल निजी महल के अंग बन गये हैं। इस शहर का निर्माण काफी कम समय (1571–1585 ई.) में किया गया और इसके लिए कोई वृहद योजना नहीं बनाई गयी थी। भवन एक दूसरे के आसपास बने थे और एक दूसरे से जुड़े हुए थे। इस परिसर के निर्माण में असममिति का जानबूझकर प्रयोग किया गया है। सभी भवनों में बेहतरीन लाल बलुए पत्थर और परम्परागत शहतीर निर्माण पद्धति का प्रयोग किया गया है। खंभों, कड़ियों, ताकों, टाइलों और स्तंभों का निर्माण स्थानीय पत्थरों से किया गया है उन्हें बिना गारे से जोड़ा गया है।

फतेहपुर सीकरी के भवनों को दो कोटियों में विभक्त किया जा सकता है – धार्मिक और गैर–धार्मिक। धार्मिक भवनों में प्रमुख हैं क) जामा मस्जिद, ख) बुलंद दरवाजा, ग) शेख सलीम चिश्ती की मजार। गैर–धार्मिक भवन कई प्रकार के हैं और इनकी संख्या भी ज्यादा हैं। इन्हें इस प्रकार विभक्त किया जा सकता है: क) महल, ख) प्रशासनिक भवन, ग) अन्य प्रकार के भवन। यह गौर करने की बात है कि आमतौर पर धार्मिक भवनों का निर्माण अर्द्धवृत्ताकार या धनुषाकार शैली में हुआ जबकि गैर–धार्मिक भवनों में शहतीर पद्धति की प्रमुखता है।

चित्र-5: जामा मस्जिद – फतेहपुर सीकरी
साभार: लेखक

जामा मस्जिद (चित्र-5) की योजना बिल्कुल एक मस्जिद के अनुरूप है – मध्य में एक बरामदा, तीन तरफ से तोरण पथ और ऊपर की ओर गुम्बदनुमा संरचना। उपासना गृह की पश्चिमी तरफ तीन अलग–अलग साधनालय या एकांत स्थल बने हुए हैं। इसमें एक गुम्बद और तोरण पथ है। मस्जिद का आम प्रवेश द्वार पूर्व की ओर है। यह प्रवेश द्वार पूर्व की ओर है। यह प्रवेश द्वार आकार में काफी बड़ा और अर्द्ध षट्कोणीय ड्योढ़ी के समान है।

चित्र-6: बुलंद दरवाजा – फतेहपुर सीकरी
साभार: लेखक

1596 ई. में अकबर ने दक्षिणी प्रवेश द्वार के स्थान पर बुलंद दरवाजा (चित्र-6) नामक विजय द्वार निर्मित किया। यह लाल और पीले बलुए पत्थर से बनाया गया है और मेहराबों की रूपरेखा निर्मित करने में सफेद संगमरमर का भी उपयोग किया गया है। बाहर की ओर से सीढ़ियों की ऊंची लंबी कतार के कारण यह और भी ज्यादा ऊंचा और भव्य दिखता है। प्रवेश द्वार में एक विशाल मध्यवर्ती मेहराब है जिससे एक करीने से गुम्बदनुमा छतरियां जुड़ी हुई हैं। 1573 ई. में अकबर के गुजरात अभियान की सफलता के उपलक्ष्य में बुलंद दरवाजा का निर्माण 1602 ई. में हुआ था।

उत्तरी पश्चिमी कोने में स्थित जामा मस्जिद के बरामदे में सलीम चिश्ती की मजार है। (चित्र-7) यह स्थापत्य कारीगरी का एक सुंदर नमूना है और भारत में संगमरमर के कलात्मक उपयोग का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। यह 1581 ई. में बनकर तैयार हो गयी थी और मूलतः इसमें संगमरमर का उपयोग अंशतः ही हुआ था। छज्जे को सहारा देता घुमावदार ताक और नक्काशी किए हुए जाली के पर्दे इस मस्जिद की उल्लेखनीय विशेषताएं हैं।

चित्र-7: सलीम चिश्ती का मकबरा – फतेहपुर सीकरी
साभार: Shashank Shekhar Sinha, *Delhi Agra, Fatehpur Sikri: Monuments, Cities and Connected Histories*, Macmillan, New Delhi, 2021.

फतेहपुर सीकरी महल परिसर में अनेक कक्ष और हिस्से हैं। इनमें सबसे विशाल जोधाबाई महल है। यह भव्य और आडंबरहीन है। बाहर की दीवार समतल है। मुख्य भवन अंदर की ओर हैं और सभी एक आंगन में खुलते हैं। उत्तर की ओर तोरणयुक्त गलियारा और बालकनी है। ऊपरी मंजिल के उत्तरी और दक्षिणी हिस्सों में कमरे हैं। इनकी छतों में फांक हैं, जिसे मुल्तान से लाये गये चमकीले बेहतरीन नीले पत्थरों से पाटा गया है।

दीवाने खास के दक्षिण–पूर्व में पांच मंजिली इमारत खड़ी है जिसे पंच महल के नाम से जाना जाता है (चित्र-8)। यह इस महल परिसर का अनूठा भवन है। इसमें जैसे–जैसे ऊपर चढ़ते जाते हैं मंजिलों का आकार छोटा होता जाता है। सबसे ऊपर एक गुम्बदनामा छतरी है। इस भवन के कुछ हिस्सों में लाल बलुए पत्थर की झिर्रियां लगवायी गयी हैं। परन्तु आज इनमें से कोई सही सलामत नहीं है। एक रुचिकर तथ्य यह है कि जिन खंभों पर ये पांच मंजिलें खड़ी की गयी हैं, वे सभी खंभे आकार प्रकार से भिन्न हैं।

चित्र-8: पंच महल – फतेहपुर सीकरी
साभार: लेखक

प्रशासनिक भवनों में, निस्संदेह, दीवाने खास सबसे अलग और खास है (चित्र-9)। इस भवन की योजना आयताकार रूप में की गयी है और बाहर की ओर से इसमें दो मंजिले हैं। इसमें एक सपाट छत है जिसके प्रत्येक कोने के खंभों पर गुंबदनुमा छतरी लगी हुई है। बीच में एक खूबसूरत नक्काशी किया हुआ स्तम्भ है, जिसके विशाल ताक के ऊपर एक वृत्ताकार पत्थर का चबूतरा बना हुआ है। इस चबूतरे से चार रास्ते निकलते हैं। ये समकोणीय रूप से अवस्थित हैं और कक्ष के ऊपरी हिस्से के चारों ओर की वीथी को जोड़ते हैं। इस संरचना का मुख्य स्थापत्यगत आकर्षण केन्द्रीय स्तम्भ है। इसकी धुरी कई प्रकार से निर्मित है और शीर्ष पर इसकी कई शाखाएं हैं, जो कई घुमावदार और दोलायमान ताकों से जुड़ी हैं। इनके सहारे केन्द्रीय चबूतरा टिका हुआ है।

चित्र-9: दीवान–ए खास–फतेहपुर सीकरी
साभार: लेखक

इस श्रेणी का दूसरा महत्वपूर्ण भवन दीवाने आम है। यह एक बड़ा आयताकार बरामदा है जो चारों ओर से स्तम्भों से घिरा हुआ है। सम्राट का चबूतरा पश्चिमी किनारे पर है। यह ऊपर उठी हुई संरचना है जिस पर बैठे हुए व्यक्ति को कोई भी देख सकता है। ऊपर पत्थर की छत है और वह पांच ओर से समान रूप से खुला हुआ है। चबूतरा तीन भागों में विभक्त है, मध्यवर्ती भाग शायद सम्राट के बैठने की जगह होगी जो कि दोनों किनारों से हटकर है और इसमें बेहतरीन चमकीले पत्थर ज्यामितीय आकार में लगाये गये हैं।

पूरे नगर परिसर में भिन्न–भिन्न प्रकार की इमारते फैली हुई हैं :

क) दो कॉरवा सरायें, एक आगरा दरवाजे के तुरंत बाद दाहिनी ओर स्थित है; और दूसरी, जो पहले वाली से बड़ी है, हाथी पोल के बाहर बायीं तरफ स्थित है।

ख) कारखाना भवन दीवाने आम और नौबत खाना के बीच में अवस्थित है, जिसमें कई ईंट के बने गुम्बद हैं, जिनमें विकिरण की क्षमता है। वे क्षैतिज कम हैं।

ग) कारवां सराय के सामने और हाथी पोल के निकट जल–आपूर्ति की व्यवस्था की गयी है। इसमें एक गहरी बावली (सीढ़ीदार कुएं) है जिसके दोनों ओर दो कोष्ठ हैं जिसके जरिए सारे शहर को जल की आपूर्ति की जाती थी।

बोध प्रश्न 1

1) निम्नलिखित वाक्यों में सही और गलत का चिन्ह लगाइए:

(i) अकबर ने अधिकांश इमारतों में निर्माण सामग्री के रूप में सफेद संगमरमर का प्रयोग किया।

(ii) अकबर ने कभी भी दोहरे गुंबद का प्रयोग नहीं किया।

(iii) अकबर की वास्तुकला धरणिक और मेहराबदार शैलियों के मेल–जोल की रही।

(iv) अकबर ने खाली जगह के भरने के लिये टोड़ा का प्रयोग किया।

2) फतेहपुर सीकरी की महत्वपूर्ण धर्मनिरपेक्ष इमारतो पर एक टिप्पणी कीजिए।

....

....

....

3) फतेहपुर सीकरी की अतिंम धार्मिक इमारतों का नाम बताइए और उन पर दो पक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

13.3 जहाँगीर के समय की स्थापत्य योजनायें

1605 ई. में अकबर की मृत्यु के बाद भी उसके उत्तराधिकारियों के नेतृत्व में एक खास मुगल स्थापत्य शैली का विकास होता रहा। अब साम्राज्य की नींव पक्की हो गयी थी और राजकोष

में अपार धन इकट्ठा हो गया था। जहांगीर और शाहजहां ने इसका जमकर फायदा उठाया और कला के विकास की ओर ध्यान दिया।

आलीशन भवनों का लेखा शुरू होता है यादगार निर्माण, अकबर का मकबरा, जो दिल्ली रोड़ पर आगरा से आठ किलोमीटर पर सिकन्दरा में स्थित है। अकबर का मकबरा इस युग का पहला प्रमुख और उल्लेखनीय भवन है (चित्र-10)। यह आगरा से आठ किलोमीटर दूर दिल्ली मार्ग पर सिकन्दरा में अवस्थित है। अकबर ने इसकी रूपरेखा खुद बनायी थी और इसका निर्माण कार्य अपने जीवन काल में ही आरंभ करवा दिया था परन्तु उसकी मृत्यु के समय यह कार्य अधूरा था। इसके बाद जहांगीर ने इसकी मूलरेखा में परिवर्तन करके इसे नये रूप में निर्मित करवाया और इस भवन को पूरा किया। आज यह पूरा परिसर जिस रूप से खड़ा है वह अकबर और जहांगीर की स्थापत्यगत योजनाओं का असाधारण सम्मिश्रण है।

चित्र-10: अकबर का मकबरा – सिकंदरा, आगरा
साभार: Shashank Shekhar Sinha, *Delhi Agra, Fatehpur Sikri: Monuments, Cities and Connected Histories*, Macmillan, New Delhi, 2021.

इस परिसर के बीच में मकबरा स्थित है जो चारों ओर से बागान से घिरा हुआ है। प्रत्येक ओर की चहारदीवारी के मध्य भाग में प्रवेश द्वार बने हुए हैं।

मध्य में स्थित मकबरे वाला भवन चौकोर आकार का है और इसमें तीन मंजिलें हैं। पहली मंजिल वस्तुतः एक छतयुक्त चबूतरा है जो तहखाने का काम करता है। इस चबूतरे के भीतर शवागार कक्ष के चारों ओर शव कक्ष बने हुए हैं और दक्षिण दिशा में एक पतला ढँलवा गलियारा है जो कब्र तक जाता है। बीच वाले हिस्सों में लाल बलुए पत्थर से बने तीन स्तर हैं, जिनमें पूरी तरह शहतीरों का उपयोग किया जाता है। ऊपरी मंजिल पर लाल बलुए पत्थर के स्थान पर सफेद संगमरमर का उपयोग किया गया है। इसमें एक खुला सभागार है, जो चारों ओर से जालियों से मुक्त स्तंभावलियों से घिरा हुआ है। मकबरा चहारदीवारी के प्रवेश द्वार से गुफाओं और सेतुपथों से जुड़ा हुआ था। परन्तु इसमें केवल दक्षिण की ओर से ही प्रवेश किया जा सकता था, बाकी प्रवेश द्वार दिखावटी थे जिनका निर्माण एकरूपता के लिए किया गया था।

दक्षिणी प्रवेश द्वार दो मंजिला था जिसके प्रत्येक कोने पर सफेद संगमरमर की गोल मीनारें खड़ी थीं। सम्पूर्ण प्रवेश द्वार का ढांचा रंगीन पलस्तर के रंग के पत्थर से अलंकृत है और इसमें संगमरमर जोड़ा गया था, इसमें खास बात यह है कि इस अलंकरण में परम्परागत फूल–पत्ती के बेलबूटों और आयतों के अतिरिक्त, गज (हाथी), हंस, पद्म (कमल), स्वास्तिक और चक्र का भी प्रयोग किया गया था। सिकन्दरा स्थित अकबर के मकबरे का स्थापत्यगत

महत्व इस बात से सिद्ध होता है कि इसके बाद बनने वाले अनेक मकबरों में इस भवन की छाप दिखायी पड़ती है। लाहौर के निकट शाहदरा में स्थित जहांगीर का मकबरा और आगरा स्थित नूरजहां के पिता मिर्जा गियास बेग का मकबरा इसके उत्तम उदाहरण हैं।

अपने पिता मिर्जा गियास बेग के कब्र पर नूरजहां ने 1622–28 ई. में इतमादुद दौला का मकबरा निर्मित किया (चित्र-11 व 12)। यह मकबरा अकबर के काल के बाद के स्थापत्यगत परिवर्तन का सूचक है। जहांगीर और शाहजहां के शासनकाल के स्थापत्य और अकबर के स्थापत्य में एक खास अंतर सूक्ष्मता और भव्यता का है। इस ढांचे में इसी सूक्ष्मता की अवधारणा की झलक मिलती है।

चित्र-11: इतमादुद दौला का मकबरा – आगरा
साभार: लेखक

मकबरा चौकोर है जो थोड़े से उठे हुए चबूतरे पर बना हुआ है। प्रत्येक कोने पर चार गुम्बद युक्त अष्टकोणीय मीनारें हैं। केन्द्रीय कक्ष के चारों ओर बरामदा है, जो खूबसूरत संगमरमर की जाली से घिरा हुआ है और इस पर मोजेक और पित्राड्यूरा किया हुआ है। केन्द्रीय कक्ष में इतमादुद दौला और उसकी पत्नी की कब्र है, जो पीले संगमरमर की बनी है। बगल के कमरे रंगीन फूल पत्तियों से अलंकृत हैं। सफेद संगमरमर का मकबरा चारों ओर से बागों और दीवारों से घिरा बड़ा खूबसूरत दिखता है। इसके चारों ओर लाल बलुए पत्थर के बने चार प्रवेश द्वार हैं।

चित्र-12: इतमादुद दौला का मकबरा – आगरा
साभार: Shashank Shekhar Sinha, *Delhi Agra, Fatehpur Sikri: Monuments, Cities and Connected Histories*, Macmillan, New Delhi, 2021.

यह ध्यान देने की बात है कि जहांगीर चित्रकला का बहुत बड़ा प्रेमी और संरक्षक था। उसे जानवरों, पेड़—पौधों, फूलों, आदि से अगाध स्नेह था। यह उसके काल के चित्रों से भी प्रमाणित होता है। इसीलिए उसने भवनों की अपेक्षा बागानों और फुलवारियों के निर्माण में अपेक्षाकृत अधिक रुचि दिखाई। कश्मीर में स्थित शालीमार बाग और निशात बाग जैसे मुगल बागान जहांगीर की इसी रुचि के परिचायक हैं।

13.4 शाहजहाँ के काल की वास्तुशिल्प योजनायें

जहांगीर के विपरीत उसका पुत्र और उत्तराधिकारी शाहजहां एक महान भवन निर्माता था। उसके शासनकाल के दौरान भवन निर्माण में संगमरमर का बड़े पैमाने पर सर्वोत्कृष्ट कलात्मक उपयोग हुआ। उसके कार्यकाल में निर्मित भवनों का लेखा निम्न प्रकार देखा जा सकता है:

13.4.1 नयी विशेषतायें

भवन निर्माण कला के क्षेत्र में शाहजहां का शासनकाल संगमरमर के प्रयोग का काल है। लाल बलुए पत्थर का स्थान संगमरमर ने ले लिया और इसका बेहतरीन प्रयोग होने लगा। इस कारण कुछ शैलीगत परिवर्तन भी आये, जो इस प्रकार हैं:

क) मेहराब को नया रूप दिया गया। इसमें घुमावदार फूल—पत्ती का उपयोग होने लगा जिसमें आमतौर पर नौ नुकीले सिरे होते थे;

ख) रंगे हुए मेहराब के संगमरमर के तोरण पथ इस काल की आम विशेषता हो गयी;

ग) गुम्बद केंद्रीय स्वरूप ग्रहण करने लगा और इसमें एक प्रकार की तंगी भी आने लगी। दोहरे गुम्बद का आम चलन हो गया;

घ) जहांगीर के शासनकाल के उत्तरार्द्ध से पच्चीकारी का एक नया तरीका सामने आया जिसे पित्राड्यूरा के नाम से जाना जाता है। इस पद्धति के तहत अशम, लेजुलाइट, सुलेमानी, चीनी मिट्टी, पुखराज और कार्नेतियन जैसे पत्थरों को संगमरमर में बड़ी नफासत के साथ फूलपत्तियों के रूप में जड़ा जाता था।

13.4.2 प्रसिद्ध स्मारक

शाहजहां का शासनकाल भवन निर्माण में संगमरमर के बड़े पैमाने पर सर्वोत्कृष्ट कलात्मक उपयोग का था। शाहजहां ने निम्नलिखित प्रकार के भवन बनवाए:

क) किले रूपी महल, मसलन दिल्ली का लाल किला;

ख) मस्जिदें, उदाहरणस्वरूप आगरे के किले में स्थित मोती मस्जिद और दिल्ली की जामा मस्जिद; और

ग) बाग से घिरे मकबरे, उदाहरणस्वरूप ताज महल।

चित्र-13: लाल किला – दिल्ली
साभार: Dr. Neeraj Sahay, Professor of History, Sri Venkateswra College, Delhi University, New Delhi. His collection of photographs can also be accessed at https://meghutsav.aminus3.com/archive/

यहां हम शाहजहां के शासनकाल के दौरान निर्मित अधिक महत्वपूर्ण और प्रतिनिधि भवनों की चर्चा करेंगे।

लाल किला (चित्र-13) आयताकार है और इसकी उत्तरी दीवार यमुना नदी के पुराने बहाव क्षेत्र से सटी हुई है। दिल्ली दरवाजा और लाहौरी दरवाजा दो प्रमुख प्रवेश द्वार हैं। दीवार के साथ–साथ एक नियमित दूरी पर विशाल गोलाकार बुर्ज है। दरवाजों के दोनों ओर अष्टकोणीय मीनारें हैं। इसमें अंधेरी गलियां हैं और इसके ऊपर बुर्ज बने हुए हैं। नदी की दिशा को छोड़कर दीवार से सटी हुई खाई बनी हुई है। किले के अंदर अनेक उल्लेखनीय भवन हैं जिनमें दीवाने आम, दीवाने खास और रंगमहल महत्वपूर्ण हैं। दीवाने आम और रंगमहल छतयुक्त वीथियां हैं, इसमें बलुए पत्थर के स्तंभ है जिन पर संगमरमर के चूर्ण का मजबूत प्लास्टर किया हुआ है। दीवाने आम की पूर्वी दीवार के साथ सम्राट का सिंहासन वाला चबूतरा बना हुआ है जिसकी छत बंगाल स्थापत्य की शैली में निर्मित है। इस इमारत की पूर्वी दिशा में रंगमहल स्थित है, जिसके आगे एक खुला बरामदा है और पत्थर की ओर रंगमहल से मिलता जुलता दीवाने खास है। इन सभी इमारतों की दीवारों, स्तंभों और खंभों पर फूल–पत्तियों का अलंकरण है।

आगरा के किले की मोती मस्जिद में खुले तोरणयुक्त प्रार्थना कक्ष का इस्तेमाल कर शाहजहां ने एक नया प्रयोग किया। इसके अलावा मस्जिद में मीनारें भी नहीं बनायी गयीं। इनके स्थान पर प्रार्थना कक्ष के चारों कोनों पर छतरियों का उपयोग किया गया। एक अर्द्धचंद्राकार तोरण के ऊपर तीन उभरे हुए गुम्बद बनाये गये थे। पूरी इमारत संगमरमर से बनी है और कालें संगमरमर से उन पर कुरान की आयतें खुदी हैं, जिससे इसका सौन्दर्य और भी बढ़ गया है।

दिल्ली की जामी मस्जिद (चित्र-14) फतेहपुर सीकरी की जामी मस्जिद का विस्तारित और बड़ा रूप है और यह भारत की अपने आप में एक बड़ी इमारत है। यह एक ऊंचे चबूतरे पर बनी हुई है जिसके चारों ओर तोरण पथ है जिन्हें दो तरफ से खुला छोड़ दिया गया है। मुख्य प्रवेश पूर्वी दिशा से है और ऊपर चढ़ने के लिए सीढ़ियां बनी हुई हैं। इससे इमारत की ऊंचाई का आभास बढ़ जाता है। उत्तरी और दक्षिणी भाग के मध्य में दो छोटे प्रवेश द्वार हैं। मस्जिद के अंदर की योजना फतेहपुर सीकरी की जामी मस्जिद के अनुरूप है – तीन तरफ स्तंम्भावलियां हैं और चौथी तरफ उपासना स्थल है। उपासन स्थल के ऊपर संगमरमर निर्मित तीन बाहर की ओर उभरे हुए केंद्रीय गुंबद हैं। पूरी इमारत लाल बलुए पत्थर से बनी है और उनमें प्लास्टर के स्थान और चौखटों के ढांचे को अलंकृत करने के लिए संगमरमर का उपयोग हुआ है।

चित्र-14: जामी मस्जिद – दिल्ली
साभार: लेखक

निस्संदेह ताज महल शाहजहां की सर्वोत्कृष्ट और अनुपम रचना है (चित्र-15)। ताजमहल एक चौकोर इमारत है, जिसके चारों ओर और चारों कोनों पर एक–एक झिरीदार कोष्ठिका बनी हुई हैं। इस इमारत के शीर्ष पर खूबसूरत उभरे हुए गुम्बद हैं जिनके ऊपर उलटा कमल कलश और एक धातु निर्मित कलश अवस्थित है। चबूतरे के चारों कोनों पर चार वृत्ताकार मीनारें हैं, जिनके शीर्ष पर स्तम्भयुक्त बुर्जियां हैं। अन्दर की ओर एक केन्द्रीय कक्ष हैं जिसके आसपास प्रकोष्ठ हैं, जो एक दूसरे से एक प्रकाशयुक्त गलियारे से जुड़े हुए हैं। मुख्य कक्ष की छत अर्द्धवृत गुंबदाकार है। यह दोहरे गुम्बद के अंदर का हिस्सा है। आयतों की नक्काशियों और पच्चीकारियों से बाहरी ओर का अलंकरण किया गया है और अंदर की ओर पित्राड्यूरा किया गया है। भवन–निर्माण के काम में लाया गया संगमरमर उच्च कोटि का है। इसे जोधपुर के निकट मकराना की खदान से लाया गया था। मुख्य इमारत के सामने की फुलवारी चार बराबर हिस्सों में विभक्त है। दो नहरें इन्हें चार हिस्सों में बाँटती हैं। मुख्य कक्ष में बनी स्मारक समाधि मूलतः सोने की नक्काशी की गयी जाली से घिरी हुई थी। परन्तु बाद में औरंगजेब ने इसे हटाकर संगमरमर की जाली लगवा दी।

चित्र-15: ताज महल – आगरा
साभार: Shashank Shekhar Sinha, 'What Really Ails the Taj Mahal?', *The Wire,* 8 July 2018. https://thewire.in/urban/what-really-ails-the-taj-mahal

ताजमहल की दृश्य और स्थापत्य सुंदरता इसकी संरचना की योजना में निहित है। यमुना नदी की किनारे एक ऊंचे स्थान पर बनी यह संरचना भव्य लगती है। स्मारक की विशाल खुले आकाश की पृष्ठभूमि इसकी दृश्य सुंदरता में अत्यधिक वृद्धि करती है, क्योंकि इसके आस पास कोई और ईमारत नहीं है इसलिए भी यह एक अकेला संगमरमर का गुम्बद क्षितिज में उगता प्रतीत होता है।

पित्रा ड्यूरा पत्थर पर चित्रकारी

मेफेयर गैलेरी गाइड 30 अगस्त 2018 ब्लाग

पत्थर पर चित्रकारी की तकनीक बहुमूल्य है और बहुत अधिक प्रयोग मे लाई गई है। इसे आभूषणों के प्राचीन बक्सों से लेकर ताज महल की दीवारों तक में पाया जा सकता है।

तकनीक का विकास – अक्सर इसे पत्थर पर चित्रकारी कहा जाता है फ्लोरेंटाइन पुनर्जागरण काल की अनेकों उपलब्धियों मे से एक है, और इस ने कुछ विशेष अद्भुत निर्माण सजाए हैं।

इसे अच्छी तरह से इस्तेमाल करना, विख्यात रूप से जटिल कौशल है और यह शिल्पकारी, भीतरी सजावट और पच्चीकारी के बीच की कला है। पत्थर पर चित्रकारी के कलाकार को उक्त तीनों कलाओं मे सिद्धहस्त होकर दिखाना पड़ता था ।

पत्थर पर चित्रकारी क्या है?

पित्रा ड्यूरा इटली भाषा का एक शब्द है जिसका शाब्दिक अर्थ 'कठोर पत्थर' है। इसे कभी कभी बहुवचन मे भी बोला जाता है, पिटरे ड्यूरे या 'कठोर पत्थर' और बहुत बार अक्सर इसे अंग्रेजी मे 'फ्लोरेंटाइन पच्चीकारी' कहते हैं।

फिर भी इसे विभिन्न रंगों के और आकार के पत्थरों को सजा कर लगाने की तकनीक के नाम से संदर्भित किया जाता है ।

जैसा कि हम देखते हैं कि भारत– एक अन्य स्थान जहां यह तकनीक लोकप्रिय है। इस तकनीक को पच्चीकारी के नाम से जाना जाता है ।

पित्रा ड्यूरा की तकनीक और प्रभाव (मारक्यूटरी) मीनाकारी से मिलता जुलता हुआ है (मारक्यूटरी एक विधि है जिसमे रंगीन लकड़ी के छोटे छोटे टुकड़ों या अन्य सामग्री को फर्श पर बिछाया जाता है ,मुख्यतया फर्नीचर को सजाने मे इस विधि को काम में लाया जाता है। मीनाकारी की तकनीक का प्रयोग नाजुक सजावटी आकारों, परिकल्प या चित्रों के लिए किया जाता है जो आमतौर पर उच्च गुणों वाले और विस्तृत विवरण के साथ होता है)। दोनों ही जोड़ लगाने की विधियाँ हैं। जहां मीनाकारी की जरूरत होती है लकड़ी के कटे हुए छोटे टुकड़े या अन्य सामग्री सजावटी परत के लिए काम आते हैं, मीनाकारी मे पत्थरों का उपयोग किया जाता है ।

इसके अतिरिक्त, पत्थर की टाईल को बिछाने की विधि के रूप मे देखते हुए मीनाकारी भी एक तरह से पच्चीकारी से मिलती हुई तकनीक है।

फिर भी इनमे अंतर है, जबकि मीनाकारी वाली टाईल मोटे तौर पर। एक ही आकार की और नाप की होती हैं और उनसे बनने वाली छवि भिन्न रंगोवाली टाईल को नियंत्रित

करके पाई जाती है। पच्चीकारी मे टाईलों को बनाए जाने वाले चित्र के अनुरूप काटा जाता है।

सामान्य रूप से पुरातन पच्चीकारी मे फूलों और फलों के आकार बनाए जाते थे। पच्चीकारी मे उपयोग किया जाने वाला पत्थर कठोर होना जरूरी होता था तकनीकी भाषा मे उनका मोह के पैमाने पर (खनिजों की कठोरता का मोह का पैमाना (मौज), जो 1 से 10 तक का गुणात्मक वर्गीय पैमाना है) 6 डिग्री से 10 डिग्री के बीच मे होना जरूरी था, जो विभिन्न खनिजों का खुरचने की कठोरता के क्रम से लगाता है, जिसमे कठोर खनिज उससे कम कठोर पर खुरचने का निशान बनाता है। यह पैमाना 1822 मे जर्मन **भूगर्भ शास्त्री और खनिज विज्ञानी फ़्रेडरिक मोह ने तैयार किया था।** यह खनिज विज्ञान मे कठोरता की बहुत सी परिभाषाओं मे से एक थी, जिनमे से कुछ और अधिक परिणामात्मक हैं –ताकि उनको बिना तोड़े हुए काटा जा सके ।

सामान्य रूप से प्रयोग किए जाने वाले पत्थर विभिन्न प्रकार के रंगों वाले संगमरमर होते हैं, साथ ही साथ मूल्यवान रत्न जैसे स्फटिक, गोमेद, सूर्यकांत और बृहममणि, और यहाँ तक कि कभी कभी बहुमूल्य रत्न जैसे पन्ना, माणिक्य और नीलम।

पच्चीकारी (पित्रा ड्यूरा) किस प्रकार की जाती है ?

पित्रा ड्यूरा का मूल सिद्धांत पत्थर के टुकड़ों को एक योजना के अनुसार इस प्रकार सजाना है कि उनके जोड़ बिल्कुल न दिखाई दें और इस प्रकार मिलने वाला परिणाम द्विआयामी हो। इसके मुख्य चरण इस प्रकार हैः

प्रथम, पहले पच्चीकारी का स्वरूप तैयार किया जाएगा और फिर उसे छापा जाएगा। रंगीन पत्थरों को जिस प्रकार की योजना हो उसी मोटाई मे अलग अलग आकारों मे काटा जाएगा।

पत्थरों की कटिंग, परंपरा के अनुसार एक लोहे के तार से की जाती है, जिनको विभिन्न प्रकार के एक लसदार चिपकाने वाले तरल पदार्थ से एक दूसरे से जोड़ कर रखा जाता है, ताकि पत्थरों का किनारा सफाई से जुड़ा रहे।

नमूना तब पत्थर पर से काट लिया जाता है । रंगीन पत्थरों के टुकड़ों को तब खाली जगहों पर चिपका दिया जाता है जहां पर रेखांकन किया गया होता है ।

एक बार पत्थरों को स्थापित कर दिए जाने के बाद उनको एक लसदार चिपकाने वाले तरल पदार्थ से भर दिया जाता है, और कोई स्थान रिक्त रह जाने पर उसमे गेसो भर दिया जाता है (गेसो एक सफेद पुताई का मिश्रण है जिसमे चुना, खरिया मिट्टी और रंग द्रव्य होता है । इसे पुताई से या अन्य सामग्री से पहले आरंभ में लगाया जाता है जिस पर पुताई की जाती है), जिससे पट्टी के आधार को मजबूत किए जा सके। तैयार हो चुकी पटिया पर यह पोलिश लगायी जाती है। खुरदुरे पत्थरों को मोम से चिपकाया जाता है ताकि सतह को चिकना किया जा सके।

पच्चीकारी वाली पटिया सामान्यतः चौड़ी होती हैं, यद्यपि ऐसे भी अवसर आते हैं, जब इसको कम उभरी हुई नक्कासी के लिए इंतजाम मे लाया जाता है ।

पच्चीकारी का असली कौशल पत्थरों के चुनाव ,उनको काटा जाना और उनको सही ढंग से बिछाने के काम मे दिखाई देता है। दो पत्थरों के बीच के जोड़ बिल्कुल गायब हो जाने चाहिए। यह तभी किया जा सकता है जब टाईल के टुकड़ों को सही आकार मे एक निश्चित कोण के आधार पर काटा जा सके, ताकि वे एक दूजे के साथ ठीक से आपस मे फिट बैठें ।

टुकड़ों को बिछाने वाला प्रभावी टुकड़ों को इस प्रकार चुनेगा और लगाएगा कि उनका स्वभाव प्राकृतिक विवरणों को प्रस्तुत करेगा, जैसे कि छाया और रगत मे फरक साफ दिखे। यही वो जगह है जहां पर पच्चीकारी की कला बहुत करीब से चित्रकारी से मिल जाती है ।

पच्चीकारी की शुरुवात कहाँ से हुई?

पत्थरों पर सजावटी काम पच्चीकारी सबसे पहले पुरातन रोम मे दिखई दिया, जिस कला को ओपस सेकटाइल के नाम से जाना जाता था। इसमे पत्थरों को एक निश्चित आकार बनाने के लिए उपयोग किया जाता था इसी प्रकार अन्य सामग्री भी जैसे सीप और शीशा भवन के फर्श और दीवारों पर प्रयोग किया जाता था ।

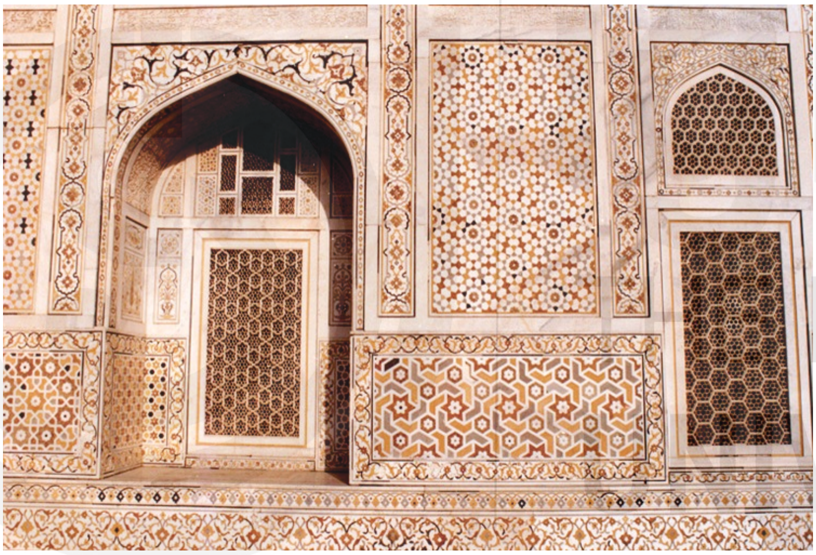

चित्र-16: पिएत्रा ड्यूरा
साभारः लेखक

यह परंपरा मध्य काल मे बाईजेंटीनियाई साम्राज्य मे लगातार चलती रही, और एक बार फिर रोम मे 16 वीं शताब्दी मे पुनर्जीवित हुई।

यह वस्तुतः फ्लोरेंस के लोगों ने सबसे पहले इस कला के बारे मे, सजावट के लिए नहीं बल्कि पत्थर पर की जाने वाली चित्रकारी के रूप मे, सोचा।

भारत मे पच्चीकारी

16 वीं शताब्दी से इस तकनीक का ज्ञान फ्लोरेंस से चलकर फैलता हुआ भारतीय महाद्वीप तक पहुँच गया।

भारत मे सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी मे पच्चीकारी का बहुत जमकर प्रभाव पड़ा। यह भारत मे मुगल साम्राज्य का समय था, एक ऐसा समय जब कला और वास्तुशिल्प का उत्थान हो रहा था।

मुगल बादशाहों को यह नयी कला पसंद आई। उन्होंने इस नयी खोज की गई तकनीक की बहुत प्रशंसा की और कई नमूने इस कला के बनवाए। पित्रा ड्यूरा की या पच्चीकारी की परिणामस्वरूप उभरी शैली खासतौर पर एक कला थी, जो अपने विशेष गुणों के कारण, अपनी परिकल्पना मे और प्रयोग मे यूरोपीय नहीं थी।

चित्र-17: पिएत्रा ड्यूरा
साभार: लेखक

भारतीय पच्चीकारी का प्रयोग अधिकांशतः वास्तुकला में किया गया न कि सजावट के कार्यों में।

संभवतः सबसे प्रसिद्ध भारतीय भवन जिसमे पच्चीकारी की कला दिखाई गई, वो ताज महल है, कदाचित जो मुगल काल की वास्तुकला के प्रतिष्ठित स्वर्णिम युग की निशानी है। पच्चीकारी के कुछ नमूने ऊपर दिखाये गए हैं। (चित्र-16 व 17)

ताज महल को बहुत भव्य तरीके से फूलों वाली पच्चीकारी से इसकी भीतरी दीवारों, फर्श और कब्रों मे इस्तेमाल किया गया और जिसमे बहुमूल्य रत्न, जैसे इंद्रगोप, लाजवर्त, फिरोजा, और मैलाकाइट का इस्तेमाल किया गया।

(https: //www.mayfairgallery.com/blog/pietra-dura-painting-stonel)

बोध प्रश्न 2

1) नीचे दिए गए वाक्यों में सही और गलत के निशान लगाएं:

जहांगीर और शाहजहां के काल की वास्तुशिल्प की मुख्य विशेषता क्या थी:

क) लाल बलुई पत्थर के बदले संगमरमर को निर्माण सामग्री के लिए लिया गया ।

ख) मेहराबों मे कई परतों वाले मोड़ का प्रयोग किया गया ।

ग) एकल गुंबद की जगह दोहरे गुंबदों का चलन हुआ ।

घ) भीतरी सजावट का काम रेखाओं और ज्यामितीय रेखांकन से बदल दिया गया ।

च) पच्चीकारी के काम का इस्तेमाल

2) लगभग 50 शब्दों मे ताज महल के वास्तुशिल्प पर एक टिप्पणी दीजिए।

....

....

....

....

....

13.5 मंदिर निर्माण

तुर्की शासन के भारत मे स्थापित होने के समय (1191–92) से मंदिर निर्माण का इतिहास बहुत उथल पुथल वाला रहा। लगभग 300 साल तक उत्तरी भारत पर दिल्ली के सल्तनत की हुकूमत के कारण मंदिर निर्माण लगभग पूरी तरह ठप रहा। तत्कालीन शासक मंदिरों के बड़े पैमाने पर तोड़–फोड़ में और उससे प्राप्त भवन निर्माण सामग्री का इस्तेमाल, मूर्तियों और अन्य वस्तुओं को उखाड़कर, मस्जिद के निर्माण में और अन्य ऐसी ही इमारतों के निर्माण के लिए इस्तेमाल में लाया गया। रिहायशी इलाकों से दूर स्थित छोटे–छोटे मंदिर ही इस विनाश से बचे रहे। कदाचित पंद्रहवीं शताब्दी में मंदिर निर्माण की परंपरा का पुर्नत्थान हुआ और निर्माण कार्य को उल्लेखनीय गति मिली। उल्लेखनीय बात यह है कि इस मंदिर पुर्नस्थापन की प्रक्रिया की अखिल भारतीय स्तर पर कोई ठोस व्याख्या उपलब्ध नहीं है। इसलिये इसकी जरूरत और भी बढ़ गई है कि इस पुर्नस्थापन की प्रक्रिया का क्षेत्रीय अवलोकन किया जाए।

पश्चिमी भारत

हम अपने इस विवरण को पश्चिमी भारत मे गुजरात और राजस्थान से आरंभ करते हैं, जिसने मंदिर निर्माण की दिशा मे पंद्रहवीं शताब्दी में दो सौ साल बाद आई तेजी को देखा। यह पुनरुत्थान मुख्यतः जैन समुदाय के कार्यों में देखा गया, जिन्होंने यह सम्मान गुजरात के सुल्तानों से अंतर क्षेत्रीय व्यापार में अपनी ताकत के कारण स्थानीय अर्थ व्यवस्था में मूल्य संवर्धन करके प्राप्त किया। यह सम्मान अन्य हिन्दू समूहों को नहीं मिल सका, इसका कारण है कि उनको सल्तनत के लिए खतरे के रूप मे देखा जाता था। जैन मंदिर पंद्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी के दौरान अधिकांशतः पवित्र स्थान गुजरात में शत्रुंजय, गिरनार पहाड़ियों और राजस्थान मे माउंट आबू पर बनाए गए। इसके अतिरिक्त, मंदिर निर्माण की योजनाएं उसी समय हिन्दू तीर्थ स्थानों मे आरंभ की गई जैसे द्वारका, सोमनाथ और शामलाजी। यह स्थिति यद्यपि अकबर के द्वारा सोलहवीं शताब्दी में मुगल राज्य–विस्तार विजय करते हुए 1572 में कुछ समय के लिए रूकी। अस्थायी तौर पर संभवतः जैन धर्म का प्रभाव और उसके कारण मंदिरों का निर्माण होना कम हो गया। सत्रहवीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों ने जैन व्यापारियों की संपत्ति की वृद्धि का पुनर्जीवन देखा और इसके साथ ही मंदिर निर्माण प्रक्रिया को फिर से गति मिल गई। शत्रुंजय पहाड़ियों के पवित्र स्थल पर गुजरात में कम से कम तीन जैन मंदिरों का निर्माण हुआ (1619 मे, 1622 और सत्रहवीं शताब्दी में) राजस्थान मे उदयपुर मे 1651 मे भव्य जगदीश मंदिर का निर्माण हुआ।

चित्र-18: शत्रुंजय मंदिर परिसर
साभार: लेखक

शत्रुंजय में आदिश्वर मंदिर (1619), वर्धमान मंदिर (1622) और चौमुख मंदिर (17वीं शताब्दी) का निर्माण किया गया (चित्र-18)। जहाँगीर के शासन काल में आदिश्वर मंदिर का निर्माण अहमदाबाद के जैन दम्पति सावा सोमजी और राजलदेवी द्वारा कराया गया। महत्वपूर्ण यह है कि मंदिर के समर्पण के पत्तलेख मे जहांगीर का नाम आया हुआ है ।

जगदीश मंदिर (चित्र-19) का निर्माण उदयपुर मे सीसोदिया राजा राणा जगत सिंह (शासनकाल 1628–52) ने कराया था। यह शहर की मुख्य बाजार मे स्थित है और इसे भूतल से ऊपर उठाकर एक मंच पर बनाया गया है, जिससे कि इसे एक भव्य रूप प्रदान किया जा सके। "मंदिर में एक विशाल गर्भ गृह है और एक दो–मंजिला मंडप है इसकी छत तिरछे आमलकों के आकार के पिरामिड के ऊपर एक कलश रूप में पूर्ण होती है। मंडप के अंदरूनी भाग के बीच मे दोहरी ऊंचाई वाला रिक्त स्थान है, जो एक अनियमित अष्टकोण के रूप में है और उपर वाले भाग में एक सुसज्जित दीर्घा है। स्तम्भों पर आठ चमकीले खूँटीदार कोष्ठ है, जिन पर गुम्बदों का निर्माण किया गया है (जॉर्ज मिचेल, *लेट टेम्पल आर्किटेक्चर इन इंडिया:* 15 से 19 सेन्चरी, ओ यू पी, नई दिल्ली 2015, पेज 227–228)।

चित्र-19: जगदीश मंदिर परिसर
साभार: लेखक

छत्रपति शिवाजी के शासनकाल में महाराष्ट्र क्षेत्र में मंदिर निर्माण मे पुनर्जीवन दिखा। सत्रहवीं शताब्दी में शिवाजी द्वारा शासित राजधानी रायगढ़ और सिंधुदुर्ग (एक द्वीप) में मंदिर निर्माण के दो महत्वपूर्ण उदाहरण उल्लेखनीय है। 1674 में अपने राज्यारोहण के समय शिवाजी ने रायगढ़ में एक मंदिर का निर्माण कराया जो जगदीश्वर मंदिर नाम से विख्यात है। यह पत्थर की बनी एक सामान्य संरचना है जिसमे बाहर से कोई सजावट नहीं की गई है। इसकी छत ईटों का गुंबद है जिस पर प्लास्टर किया गया है और भीतरी मंडप पर नीची गुंबददार छत है। दूसरा मंदिर सिंधुदुर्ग में है जिसे राजाराम ने अपने पिता शिवाजी के सम्मान में 1695 में बनवाया। शिवाजी की स्मृति को आगे बनाए रखने के लिए इस मंदिर का नाम शिवराजेश्वर रखा गया।

मध्य भारत

1191–92 में दिल्ली में, तुर्की शासन के स्थापित होने के पश्चात चार सौ सालों तक इस इलाके में मंदिर निर्माण कार्य बाधित रहा। केवल अकबर के शासन काल मे वाराणसी, वृंदावन और मथुरा तथा देवगढ़ मे मंदिर निर्माण कार्य हुआ। वाराणसी का विश्वनाथ मंदिर 1595 मे राजा टोडरमल द्वारा बनवाया गया (चित्र-20), वृंदावन का गोविंददेव मंदिर 1590 मे आमेर के राजा मान सिंह द्वारा बनवाया गया। देवगढ़ का वैद्यनाथ मंदिर जिसमे शिवजी का ज्योतिर्लिंग है राजा पूरन मल, (एक स्थानीय हिन्दू मुखिया) ने 1596 मे बनवाया। ये सभी तीन मंदिर बड़े भव्य आकार मे बनाए गए। यद्यपि, 1699 में राजा टोडर मल का मंदिर मुगल बादशाह औरंगजेब द्वारा ध्वस्त कर दिया गया और मथुरा के मंदिर भी 1670 मे उसके आदेशों से नष्ट कर दिए गए। इन बड़े आकार के मंदिरों के अतिरिक्त, दो छोटे मंदिर वृंदावन–मथुरा क्षेत्र में भी बनवाए गए। 1575 सं मे आमेर के राजा भगवान दास ने गोवर्धन में हरिदेव मंदिर बनवाया और वृंदावन में सोलहवीं शताब्दी के अंत में मदन मोहन मंदिर बनवाया गया।

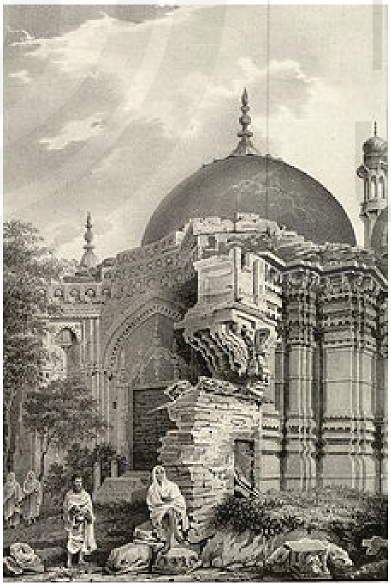

चित्र-20: राजा टोडर मल विश्वनाथ मंदिर – वाराणसी

साभार: https://commons.wikimedia.org/wiki/File: Temple_Of_Vishveshwur_ Benares_ by_James_ Prinsep_1834.jpg
"Temple of Vishveshwur, Benares," lithograph, by the Anglo-Indian scholar and mint assay master James Prinsep. Dated 1834. Coutesy of the British Library, London.

जहांगीर के शासन काल मे दो बड़े मंदिर बुंदेलखंड के बीर सिंह देव ने बनवाए। चतुर्भुज मंदिर उनकी राजधानी ओरछा मे और दूसरा मथुरा मे। दो छोटे मंदिर भी इस काल खंड मे बनवाए गए; 1627 सं में वृंदावन में युगल किशोर मंदिर बनाया गया और राधिका बिहारी मंदिर

सत्रहवीं शती मे ओरछा में बनाया गया। बाद में मुगल सम्राट शाहजहाँ द्वारा चतुर्भुज मंदिर छिन्न भिन्न कर दिया गया। औरंगजेब के फरमान से मथुरा–मंदिर भी नष्ट कर दिया गया, जैसा कि ऊपर बताया गया है। जबकि छोटे मंदिर उजड़ने से बच गए ।

पूर्वी भारत

पूर्वी भारत मे मंदिर निर्माण की प्रक्रिया कभी भी पूरी तरह से बंद नहीं हुई मुगल शासन काल मे। उड़ीसा, बंगाल आसाम और त्रिपुरा मे मंदिर नियमित आधार पर बनाए गए स्थानीय शासकों के और जागीरदारों संरक्षण मे। भगवान जगन्नाथ की भूमिका औपचारिक रक्षक के रूप मे होने के कारण ही उड़ीसा मे मंदिर निर्माण की क्रिया निर्बाध रूप से चलती रही। 1574 मे स्थानीय शासक वैद्यनाथभंज ने बरिपद मे बड़ा जगन्नाथ मंदिर बनवाया (चित्र-21)। यह मंदिर ढले हुए चबूतरे पर बिना सजावट धुली हुई दीवारों पर स्थित है और जगमोहन और रेखाडुएल से निहित है दोनों ही उनके ऊपर पतली फलकित मीनार चुप्पी साधे चार शेरों पर उभरे अमालक पर रखी गई है। जगमोहन को गहरी पिरामिड आकार की छत, दो स्तरों वाला पीढ़, जिसे चारों दिशाओं मे थोड़ा सा उभार दिया गया गया है और ऊपर एक सामान्य घंटे के साथ दी गई है (जॉर्ज मिशेल पेज 168)। जयपुर मे दूसरा जगन्नाथ मंदिर सोलहवीं शताब्दी के द्वितीय अर्ध–काल का माना जाता है । इस मंदिर मे "जगमोहन अंदरूनी भाग "मे त्रिकोण आकार की छत है जिसमे असामान्य प्रकार के अर्ध वृत्त वाले किनारे हैं (पेज 172)। सम्बलपुर मे संबलेश्वरी मंदिर है जो देवी का मंदिर है। इसे स्थानीय शासक छत्र साई ने 1691 मे बनवाया गया (1690–1725)। गुंबद वाला केंद्र कक्ष, उत्तर से प्रवेश, दोहरी वीथिकाओं द्वारा चारों दिशाओं से घिरा है जिसमे खण्डदार मेहराब गोलाकार पंक्तियों रूप में दिखती हैं (पेज 178)।

चित्र-21: जगन्नाथ मंदिर
साभार: लेखक

यह देखना रुचिकर लगता है कि अकबर द्वारा बंगाल को मुगल साम्राज्य मे मिला लिए जाने के बाद मंदिर निर्माण की प्रक्रिया तेजी से बढ़ गई। जॉर्ज मिशेल इस अजीबोगरीब घटना के बारे मे इस प्रकार बताते हैं "तुलनात्मक आधार पर बंगाल मे मुगलों का नियंत्रण निश्चित तौर पर कमजोर रहा होगा क्योंकि विष्णुपुर के मालास और कुछ छोटे हिन्दू मुखिया जो कलना, बर्दवान, पबना, और अन्य केंद्रों के थे अनगिनत मंदिर बनवाने मे सफल रहे, यद्यपि वो आकार मे तुलनात्मक रूप से छोटे रहे" (पेज 30)। इनमे से अधिकतर मंदिर स्वदेशी ईंटों और लाल

भूरी मिट्टी से निर्मित थे जो उस क्षत्र मे आसानी से निर्माण सामग्री के रूप मे मिल जाती थी। उल्लेखनीय है कि 1598 मे बना वैद्यपुर का कृष्ण मंदिर, पबना मे गोपीनाथ मंदिर (अब बांग्लादेश मे है) 1607 मे बना, 1643 मे विष्णुपुर मे बना श्याम राय मंदिर ,केशता राय मंदिर भी 1655 मे विष्णुपुर मे बनाया गया, 1679 मे बांसबेरिया मे वासुदेव मंदिर बनाया गया और मदन मोहना मंदिर 1694 में बिष्णुपुर बनाया गया। कोडला मे और मथुरापुर मे (सोलहवीं शती के अंत समय) ऊपर की ओर उठती हुई दो मीनारों वाले मंदिर बनाए गये। तीन मंदिर अठारहवीं शती के भी थे। एक कांतानगर (अब बांग्लादेश मे) कांताजी मंदिर के नाम से जाना जाता है, मंदिर जिसका निर्माण नजदीक के दिनाजपुर के शासक राजा प्राणनाथ ने 1704 मे करवाया और इसे उनके उत्तराधिकारी राजा रामनाथ ने 1722 मे पूर्ण कराया। अन्य दो कलना मे बने जिनको कृष्ण चंद्र मंदिर के नाम से जाना गया, इनका निर्माण 1752 मे बर्दवान के राजा त्रिलोक चंद राय ने कराया और दो मंदिरों का एक जोड़ा जिनको जोड़ा शिव मंदिर कहा गया 1753 मे निर्मित हुए। .

आसाम और त्रिपुरा मे भी कुछ कम पर इसी प्रकार मंदिर निर्माण की प्रक्रिया होते देखी गई। बंगाल की तरह, आसाम भी कुछ कुछ मुगल नियंत्रण में था और उस क्षेत्र मे बहुत से छोटे हिन्दू राजा थे, जिन्होंने मंदिर निर्माण को संरक्षण प्रदान किया। गुवाहाटी मे बने प्रसिद्ध कामाख्या मंदिर का उल्लेख किया जा सकता है। इसे राजा नर नारायण ने 1565 मे स्थापित करवाया । बाद मे इस मुख्य मंदिर मे अनेकों बदलाव किए गए। अन्य एक मंदिर 1583 मे हाजों मे बना इसे रघुदेव ने बनवाया जो सेना कमांडर राजा रघु राव का बेटा था। यह मंदिर हयग्रीव माधव मंदिर कहलाया। शिव सागर मे जॉयसागर ताल के किनारे तीन मंदिरों का समूह भी है। इनको 1698–99 मे अहोम राजा रुद्र सिंह (शासन 1696–1714) ने बनवाया। त्रिपुरा मे उदयपुर मे दो एक समान दिखने वाले मंदिरों का समूह है जिसको गणवती मंदिर कहा जाता है । इनका नाम त्रिपुरा के राजा गोविंद माणिक्य (शासन काल 1660–1676) की महारानी के नाम पर रखा गया और इसे 1669 मे बनाया गया ।

दक्षिणी भारत

दक्षिणी भारत में भी कृष्णा नदी के दक्षिणी भाग के प्रायद्वीप क्षेत्र मे तेरहवीं शताब्दी के अंत समय मे दिल्ली के सुल्तानों की सेनाओं की चढ़ाईयों से मंदिर निर्माण को धक्का लगा। किन्तु, यह अधिक देर तक नहीं रहा और विजयनगर साम्राज्य की स्थापना से मंदिर निर्माण/पुनर्निर्माण की क्रिया और नई योजनाओं की शुरुआत इस क्षेत्र मे फिर से प्रारम्भ हो गई। सोलहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध इस बात की गवाही देता है कि प्रांतीय राज्यपालों के अंतर्गत, जिनको नायक कहा जाता था मंदिर निर्माण का कार्य बहुत अधिक उत्साह के साथ होता रहा। जॉर्ज मिशेल लिखते हैं कि "सोलहवीं शताब्दी और सत्रहवीं शताब्दी मे पूरे समय इन लोगों द्वारा मंदिर का निर्माण प्रायोजित ढंग से अपने–अपने मुख्यालयों में किया गया, (सेनजी, तंजावुर और मदुरै)। साथ ही साथ कांचीपुरम और कुम्भकोनन्द और तिरुवन्नामलाई तीर्थस्थल पर बने सबसे बड़े हिन्दू मंदिरों के निर्माण की तरह देश भर मे उस समय कहीं भी नहीं हो सका (पेज 36)

हम सेनजी महल मे वेंकटारमण मंदिर बनाए जाने की बात सामने रख सकते हैं और कृष्नप्पा-I (शासन काल 1567–1572) के नाम किया गया है। इसका मुख्य गोपुर पूर्वी दिशा के मध्य में है और सात मंजिल तक ऊंचा है। दूसरा उदाहरण श्रीमुशनम में है जो सेनजी के कृशनप्पा नायक-II (शासन काल 1572–1608) द्वारा बनवाया गया। इसे भुवराह मंदिर के नाम से जाना जाता है। "यह मंदिर छोटे स्थान पर है जो चारों तरफ से खंभों से घिरा है और पहले एक मंडप है जिसमे चार जोड़ी खंबे हैं जिन पर शेर के कोष्ठक दिखते हैं और सभी चतुष्कोणीय दीवालों के भीतर हैं" (पेज 315)।

13.6 सराय और पुल

सराय

सराय की खुली जगह वाली इमारत मध्य भारत की आवागमन मे आबादी की जरूरतों को पूरा करती उस काल की सबसे विशिष्ट सार्वजनिक इमारतों का प्रतिनिधित्व करने लगी। कठिन परिस्थितियों और निष्ठुर ग्रामीण जन मानस के कारण आम यात्रियों के लिए आराम और बसेरे की जगह जगह पर सुविधाओं की आवश्यकता पड़ी, दूर–दूर फैले कस्बों और शहरों वाले भारत में वास्तव में ये सुविधा संभव नहीं थी। सराय की संरचना मुख्य मार्गों के साथ साथ सुविधाजनक स्थलों मे जहां लोग अपने पशुओं के साथ सुरक्षित रूप में रात्रि को विश्राम कर सकें, को देखते हुए की गई और जहां उनको दाना पानी भी मिल सके। इन सरायों को राज्य शासन द्वारा और सम्पन्न नागरिकों द्वारा सेवा भाव में बनवाया गया।

चित्र-22: सराय
साभारः लेखक

भारत मे 13 वीं शती मे सरायों का उपयोग किया जाना आरंभ हुआ ,और सत्रहवीं शती के आते आते मुगल साम्राज्य के प्रमुख मार्गों पर मुख्य रूप से स्थापित किया गया। फिर भी सभी मार्ग इस संबंध मे लोकप्रिय नहीं हो सके। जबकि आगरा–दिल्ली–लाहौर–मुल्तान–काबुल मार्ग और आगरा–पटना–राजमहल मार्ग पर ज़्यादह सराय बनाई गई थीं ,यात्रियों को सभी प्रकार की सुविधा देते हुए। गुजरात मे आंतरिक स्थलीय मार्ग और वो जो सूरत और बुरहानपुर से ढाका तक जाता है, पर सराय की व्यवस्था कम थी।

चित्र-23: सराय
साभारः लेखक

ये सराय, जो कम से कम राज्य शासन द्वारा स्थापित की गईं थीं, उनमें एक सुगठित संचालन व्यवस्था थी। ठहरने के अतिरिक्त, सरायों मे यात्रियों के लिए अन्य बहुत सी सुविधाओं का इंतजाम किया गया था। इन मे खाना, बिस्तरे, पशु आहार, घोड़ों और अन्य चरनेवाले जानवरों के लिए चारे की व्यवस्था और सामान रखने की कोठरी आदि सम्मिलित थीं। सोलहवीं शती के उत्तरार्ध के अंतिम वर्षों के दौरान सभी सुविधाएँ अधिकांश यात्रियों को निशुल्क उपलब्ध थीं, संभवतः व्यवसाय और भ्रमण को प्रोत्साहित करने के लिए ऐसा किया गया होगा। सत्रहवीं शती मे इस स्थिति मे एक बदलाव आया। जबकि सुविधाओं की सूची मे बढ़ोतरी हुई, यात्रियों से शुल्क लिया जाने लगा। यद्यपि वो शुल्क नाममात्र का ही था, सराय मे ठहरने के समय जिन सुविधाओं का प्रयोग यात्रियों द्वारा किया गया।

बाहर से देखने पर सराय (चित्र-22 व 23) वर्गाकार या आयताकार, दीवार वाली दिखती थी, जनमें एक या दो प्रवेश द्वार थे, जिनमे से बड़े और भारी लदे हुए पशु आ सकें। दालान अधिकतर ऊपर से खुला हुआ होता था, भीतर की ओर अंदरूनी दीवारों के साथ कमरे और कक्ष बड़ी संख्या में होते थे। अधिकतर मामलों मे ये सभी कक्ष एक समान दिखते थे। लेकिन कभी कभी इनमे से कुछ कक्ष आमने सामने के ब्लाक के मध्य में स्थित थे जो अन्य सामान्य कमरों के मुकाबले आकार मे बड़े होते थे, और अक्सर इनमें अतिरिक्त जगह भी हुआ करती थी आले और कुटी के रूप मे जो दीवारों पर बनी होती थीं। आयताकार भवन के चारों कोनों मे भी काफी जगह होती थी, जो और इस निर्माण का आकार और रेखांकन सामान्य और बड़े कक्षों के मुकाबले बिल्कुल भिन्न प्रकार का होता था। भीतर से सराय के भवन को देखने पर आमतौर पर एक तंग बरामदा कमरों के सामने चारों दिशाओं मे होता था। इसके अतिरिक्त एक मस्जिद होगी और एक या दो कुएं मैदान मे होंगे, और एक सीढ़ी होगी जो कमरों की छतों तक जाती होगी, जो बड़े कक्षों या किनारे के कक्षों के एक ओर बनी होंगी। कभी कभी ये सीढ़ियाँ प्रवेश द्वार के साथ भी बनी होती हैं। प्रवेश द्वारों का ढका हुआ हिस्सा, कभी कभी दो तीन मंजिल का भी होता है, जिनमे कई छोटे कमरे और गलियां होती हैं।

एक बड़ी अच्छी तादाद मे सराय आज भी अपने मौलिक आकार मे बची हुई हैं और देश के विभिन्न भागों में पाई जाती हैं। सराय की सामान्य विशेषताएं जो ऊपर बताई गईं हैं बची हुई सरायों मे से कम कर दी गई हैं। एक यात्री को औसतन जगह जो रहने के लिए मिलती है, सराय के प्रयोग करने मे मध्यकालीन भारत मे उसके उपयोग के लिए पर्याप्त होती थी। यहाँ तक कि दो जनों के लिए आवश्यकता पड़ने पर इतनी जगह होती थी कि दो चारपाइयाँ या बिस्तर लगाए जा सके । बड़े कक्ष संभवतः धनी यात्रियों के लिए किराये पर लिए जाते थे। कुछ और बड़े आवासों मे अंदर की तरफ हमाम की भी सुविधा रहती थी। यद्यपि यह कोई सामान्य व्यवस्था नहीं थी। चूंकि सराय प्रथमतः सार्वजनिक संस्था थी, सराय मे प्रवेश के लिए किसी खास वर्ग या जाति के लिए किसी भी प्रकार का कोई निषेध नहीं था।

पुल

पूरे मध्यकालीन इतिहास मे पंजाब मे चौड़ी पाट वाली प्रमुख नदियों पर पक्के पुल नहीं थे। इसी प्रकार गंगा नदी की घाटियों मे पक्के पुल नहीं थे। जो तरीका अधिकतर काम मे लाया जाता था इन बड़ी नदियों को पार करने के लिए सामान्य यात्रियों द्वारा वो नावें हुआ करती थीं, जो कभी नदी पार करने के लिए महत्वपूर्ण नदियों मे सेवा के रूप मे लगाई जातीं थीं। अक्सर यात्री इन नावों से भी इन नदियों को पार करने में इस्तेमाल कर लेते थे जहां यह

आसानी से मिल जातीं थीं। लेकिन सेना के आक्रमण के दौरान इन नदियों को पीपे के पुल से भर दिया जाता था, जो सामान्यतः अस्थायी संरचना होती थी और उसे काम समाप्त होने के बाद हटा लिया जाता था। कुछ ऐसे भी संदर्भ मिलते हैं जिससे यह पता चलता है बड़ी बड़ी नदियों मे महत्वपूर्ण शहरों मे प्रवेश करने के लिए नावों पर बने पुल भी हुआ करते थे। इसी प्रकार, ऐसे भी प्रमाण हैं जिससे पता चलता है कि पर्वतीय क्षेत्रों मे लकड़ी के और झूलते हुए पुल भी थे।

पक्के पुल अधिकतर आगरा और दिल्ली से निकलने वाली मुख्य सड़कों पर ही बनाए गए थे । इनमे से अधिकांश भवन ऐसे बिंदुओं पर थे, जहां रास्ते नदियों द्वारा काटे जा रहे थे या छोटी नहरों द्वारा जो अपने प्राकृतिक रूप में उतार में रहती हैं और बरसात के मौसम मे उफान पर आ जातीं हैं। जैसाकि बर्नियर विशेष रूप से बताते हैं पक्के पुल, पूरे मध्य कालीन भारत मे बड़ी नदियों मे गायब थे। ऐसा लगता है उस समय तक पुल निर्माण की अभियांत्रिकी पूरी तरह से विकसित नहीं हो सकी थी, जिससे कि इतने बड़े पैमाने पर पुलों का निर्माण कार्य हाथ मे लिया जा सके।

वर्तमान पक्के पुलों के भौगोलिक वितरण को देखने से एक विशेष महत्व की बात का पता चलता है। उत्तरी मैदानों के क्षेत्र मे पक्के पुलों की संख्या का भार और बाकी पूरे देश मे बहुत तेजी से बदलता है, यह अनुपात 3:1 का है। इसको भिन्न भिन्न भौगोलिक परिस्थितियों के कारण भी माना जा सकता है, विशेषकर उपमहाद्वीप की भिन्न भौगोलिक भूभाग मे बहने वाली नदियों के अलग अलग व्यवहार के कारण।

मध्यकालीन एक पक्के पुल मे निम्नलिखित चार संरचनात्मक तत्व मिले होते हैंः

अ) नदी की तल भूमि पर नींव ,जिस पर खंभे खड़े किए जाते हैं,

ब) खंभे स्वयं के अपने ऊर्ध्व भार और चाप के दबाव को सम्भालते हैं, और बहते पानी के दबाव को भी,

स) छाप जो खंभों पर उठाए जाते हैं और जो मजबूत संरचना बनाते हैं ,सड़क का भार उठाते हैं, और

द) अंत मे दो किनारों के जोड़, बड़ी मात्रा मे उस भारी संरचना का बोझ बड़ी मात्रा मे उठाते हैं। निम्नलिखित विवरण मे हमने चार संघटकों पर ध्यान दिया है–

नींव – पक्के पुलों के निर्माण मे नींव का बहुत अधिक महत्व है। एक सुरक्षित नींव जो खंभों का और रखे जाने वाले चाप का वजन उठाने के काबिल हो, नदी के तल पर किसी चट्टान की तरह होनी चाहिए। भारत मे मध्यकालीन युग में ऐसी प्रक्रिया और तकनीक से नींव रखे जाने के प्रमाण बहुत कम मिलते हैं। ऐसा लगता है कि नावों को डूबा कर या कुएं खोद कर उस बिन्दु पर पहुँचा जाता था जहां पर नदी तल पर ठोस और मजबूत जमीन मिल सके, यही एक तरीका था। कनिंघम ने राय दी है कि डोंगरी मे सिंड पर बने पुल की जगह ऐसी थी जहां "नदी का भूतल बराबर पथरीला था और हर प्रकार का लाभ पक्के पुल को निर्मित किए जाने का मिल रहा था", इस बात की पुष्टि करता है। उन्होंने इस बात को उपयुक्त पाया कि नदी के भूतल में और गहरे जाने के बजाय नीचे नींव के आधार को चौड़ा कर दिये जाने की आवश्यकता रहेगी, ताकि कोई भी गलती हो तो उसको सुधारा की जा सके। एक

रुचिकर संरचना जो इस प्रकार का उदाहरण पेश करती है वो अकबर के काल मे सेंगुर नदी पर छपरघात मे बने पुल का है, जिसकी नींव इसी प्रकार रखी गई थी । यहाँ पर नींव को नदी के भूतल के लगभग बराबर स्तर पर डाला गया और उसकी चौड़ाई उसपर रखे गए खंभों की चौड़ाई से भी अधिक सात फुट तक थी/रखी गई।

राजगीरों द्वारा जो सामान्य विधियाँ अपनाई गईं नींव को नीचे नदी तल मे डालने की जगह सूखी हो यह अपेक्षा रहती थी। यह तरीका पश्चिम मे आम तौर पर काफरडैम बनाए जाने के उद्देश्य से काम लाया गया, लेकिन भारत मे इसे निपुणता से नहीं किया जा सका। इसके लिए उन्होंने एक बहुत कठिन विधि का प्रयोग किया, जिसमे पानी के बहाव को एक उचित स्थान पर नदी के ऊपर की ओर एक बांध बना कर एक दूसरी वैकल्पिक नहर मे डाला। यह बहुत संदेहजनक लगता है फिर भी क्या उन दिनों नदियों को सफलतापूर्वक मोडा जा सका होगा, जब तक कि पानी का बहाव मौसमी न हो और सूखे के मौसम मे न्यूनतम न हो जाता हो। एक समस्या वास्तव मे आएगी प्रमुख नदियों के संबंध मे, जिनमे सूखे के मौसम मे भी बड़ी मात्रा मे जल उपलब्ध रहता हो। संभवतः नदी के फाट को आधे मे रोक कर रखने की विधि, जिससे दूसरा आधा भाग सूखा रह सके, पूरी तरह सुनिश्चित नहीं हो सकी थी। बड़ी नदियों के संदर्भ मे, इस कारण पक्के पुल के निर्माण के लिए सूखी जगह प्राप्त किया जाना मुश्किल काम होता होगा ।

यहाँ यह जानना महत्वपूर्ण है कि पश्चिम मे सोलहवीं शताब्दी के प्रारंभ मे एक बहुत उन्नत विधि का प्रयोग नीव डालने के लिए होता था ।

भारतीय राजगीरों ने कोई उल्लेखनीय सुधार इस संबंध मे नहीं किया और पुरानी और नाकाफ़ी तकनीक का प्रयोग जो किया जा रहा था, कमोबेश सत्रहवीं सदी के अंत तक बिना किसी बदलाव के चलता रहा।

खंबे – पुलों के खंबे बहुत चौड़े बनाए जाते थे ,जिनकी औसत मोटाई लगभग पुल के पाट की दो–तिहाई के बराबर होती थी। उनको पानी की सतह से बहुत ऊपर नहीं रखा जाता था, जब तक कि खास भौगोलिक स्थितियां मजबूर न कर दें। विचार यह था कदाचित कि बाढ़ के समय पुल पानी मे डूबा रहे ताकि सारे पुल पर तेज बहाव वाले पानी का दबाव कम पड़े। अधिक छाप वाले पुलों मे , इसलिए प्रत्येक खंबे को इतना मजबूत बनाया जाता था कि सारे पुल के भार का दबाव जो ऊपर की ओर पड़ता था उसे वह सहन कर सके । इस नक्शे मे ,वस्तुतः खंबे ही आधार की भूमिका भी निभाते हैं, ताकि पुल का प्रत्येक व्यक्तिगत चाप अपने मे एक स्वतंत्र इकाई होता है, जो अपने बल पर दो खंबों को ताकत देता है। खंबों की डिजाइन मे जो अतिरिक्त चौड़ाई दी गई है कुछ नुकसान होने के बावजूद भी बनाए रखी गई। ऐसा लगता है कि खंबों के नक्शे मे वास्तुविद इस बात पर विश्वास नहीं कर पा रहे थे कि पतले खंबे इतने बड़े निर्माण का भार उठाने के काबिल होंगे और यह सुनिश्चित करने मे ही लगे रहे कि खंबों की चौड़ाई/मोटाई को बढा कर ही पुल के चाप को होने वाले संभावित खतरे के नुकसान से बचाया जा सके। इस प्रकार के डिजाइन मे भी लाभ था। चूंकि खंबों का प्रत्येक जोड़ा वस्तुतः चाप युक्त वृहत निर्माण का सारा भार उठाने मे लगा था, और बहुत थोड़ा भार ही किनारे के अनुपात मे बहुत कम ही चाप का पास के दूसरे खंबे पर जाता था, किसी भी एक या एक से अधिक खंबे मे हुए नुकसान का प्रभाव अन्य खंबों या पूर्ण निर्माण को नीचे नहीं गिरा देगा ।

चित्र-24: पुल – घाटमपुर
साभारः लेखक

चाप ऐसा लगता है कि चापों के निर्माण मे पत्थरों का उपयोग भारत मे 13 वीं शताब्दी मे किया गया और राजगीरों द्वारा इसे बेहतरीन विधि के रूप मे वास्तुशिल्प के लिए तुरंत अपना लिया गया। मध्यकालीन भारत मे पक्के पुलों के बड़े–बड़े निर्माण इसी सही चाप के सिद्धांत पर किए गए। लेकिन यह ध्यान देने योग्य है कि इन निर्माणों मे चाप की बनावट/आकार को घोड़े के नुकीले जूते की तरह रखा गया, जो परसिया से नकल किया गया लगता है, जहां इसे बहुत ही विकसित रूप मे इस्तेमाल किया जाता था (चित्र-24)। पुलों के निर्माण मे मुगल राजगीरों द्वारा अर्ध– वृत्ताकार चाप का प्रयोग न दिखाई देना जोकि पश्चिम मे बहुतायत से उपयोग किया जाता था, एक प्रकार से आश्चर्यजनक है।

जोड़ – पुल के अंत मे जोड़ की संरचना होती है, जो पुल के क्रम से लगे चापों पर इकठ्ठा पड़ने वाले क्षेतिजीय दबाव को सहन करता है। पुल के स्थायित्व के लिए, इस कारण मजबूत जोड़ आवश्यक हैं। लेकिन ऐसा लगता है कि मध्यकालीन युग के पुलों के निर्माण मे जोड़ों को मजबूती प्रदान करने के संबंध मे अधिक ध्यान नहीं दिया गया। जोड़ों के आकार और लंबाई को निर्माण स्थल की परिस्थितियों के आधार पर तय किया गया। इसलिए उस समय एक समान मानदंड इनकी परिकल्पना और आकार के बारे मे पुल के निर्माण किए जाते समय नहीं अपनाया जा सका । इस तरह सुझाव पहले दिया गया है कि मुगल जोड़ वाले पुलों के खंबे इस प्रकार डिजाइन किए गए थे कि वे आंशिक तौर पर जोड़ों का उद्देश्य भी पूरा कर सकें। यह संभव प्रतीत होता है कि नुकीले चाप चौड़े खंबों पर बने होने पर मजबूत जोड़ों के रख रखाव की ओर ध्यान रखे जाने की आवश्यकता को समाप्त कर देता था ।

बोध प्रश्न 3

1) इस अध्ययन काल के दौरान गुजरात मे हुए मंदिर निर्माण की क्रिया के बारे मे पाँच पंक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

....

....

2) इस अध्ययन काल मे उड़ीसा के मंदिरों पर पाँच पंक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

....

....

3) सत्रहवीं शताब्दी के दौरान किन यात्रा मार्गों पर सराय की व्यवस्थाएं की गईं थीं?

....

....

....

....

13.7 औरंगजेब के समय का वास्तुशिल्प

यह भाग दो उपभागों में विभक्त है। पहले में औरंगजेब कालीन भवन निर्माण की गतिविधियों का उल्लेख किया गया है और दूसरे में औरंगजेब के शासनकाल के बाद के समय की वास्तुकला का जिक्र किया गया है।

3.7.1 मुख्य भवन

अपने पिता के विपरीत औरंगजेब की स्थापत्य में कोई रुचि नहीं थी। उसके पूर्वजों ने कला को काफी बढ़ावा दिया, परन्तु उसके शासनकाल में इन सब चीजों का महत्व काफी घट गया। पूर्ववर्ती मुगल शासकों की अपेक्षा औरंगजेब द्वारा बनाये गये भवन काफी कम हैं और इनका स्तर भी साधारण है। साम्राज्य की राजधानी दिल्ली में भी औरंगजेब के नाम से जुड़ी इमारतें कम ही हैं। औरंगजेब द्वारा बनवायी गयी इमारतों में औरंगाबाद स्थित उसकी बेगम रबिया उद दौंन का मकबरा, लाहौर की बादशाही मस्जिद और लाल किला (दिल्ली) में बनी मोती मस्जिद है। आकार और बनावट में बादशाही मस्जिद दिल्ली की मस्जिद से मेल खाती है। इसमें एक बड़ा सभागार, खड़े होकर प्रार्थना करने का कक्ष और कक्ष के प्रत्येक कोने में मीनारें हैं। उपासना स्थल के प्रत्येक कोण पर चार छोटी मीनारें हैं। इसके उपासना कक्ष के दोनों और एक खास अंतर पर मेहराबी प्रवेशद्वार है। इसमें केवल एक चँदोवा है। इमारत में ज्यादातर लाल बलुए पत्थर का प्रयोग किया गया है। कहीं–कहीं नाम मात्र के लिए संगमरमर का

इस्तेमाल किया गया है। उपासना कक्ष के ऊपर तीन उभरे हुए गुम्बद खुबसूरत लगते हैं।

लाल किला (दिल्ली) में स्थित मोती मस्जिद इस युग की दूसरी महत्वपूर्ण इमारत है। इस इमारत के निर्माण में उच्च कोटि का संगमरमर लगाया गया है। आगरा के किले में शाहजहां निर्मित मोती मस्जिद से यह मस्जिद मेल खाती है। यहां केवल वक्रता ज्यादा उभर कर सामने आयी है। उपासना कक्ष के ऊपर तीन उभरे हुए गुम्बद बने हुए हैं जो एक ही आकार की बुर्जी के रूप में बनाये गये हैं।

औरंगजेब की पत्नी के मकबरे (चित्र-25) में ताजमहल की नकल करने की कोशिश की गयी है। लेकिन औरंगजेब का स्थापत्य शिल्पी मकबरे के कोने पर सही ढंग से मीनारों को स्थापित नहीं कर पाया है, जिसके कारण पूरे भवन का सामंजस्य बिखर गया है। ताजमहल की नकल करने की कोशिश असफल रही है। इसकी मीनारें पूरी संरचना से मेल नहीं खातीं।

चित्र-25: औरंगजेब की पत्नी का मकबरा – औरंगाबाद
साभार: लेखक

13.7.2 सफदर जंग का मकबरा

1707 ई. में औरंगजेब की मृत्यु के बाद साम्राज्य भरभरा कर गिर पड़ा। अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में बनी कुछ इमारतें इस पतन की गवाह हैं।

चित्र-26: सफदर जंग का मकबरा – दिल्ली
साभार: लेखक

दिल्ली में स्थित सफदर जंग का मकबरा इस युग का सबसे महत्वपूर्ण भवन है (चित्र-26)। यह एक बड़े बाग से घिरा हुआ है और औंरगाबाद में बने रबियाउद्दौरान के मकबरे के समान यहां भी ताजमहल की नकल करने की कोशिश की गयी है। हालांकि इसके आकार प्रकार में बदलाव यह किया गया है कि इसकी मीनारें मुख्य भवन के हिस्से के रूप में ही निर्मित

हैं। ये स्वतंत्र ढांचे नहीं हैं। मुख्य भवन छत्तेदार चबूतरे पर खड़ा है। इसमें दो मंजिलें हैं और यह एक बड़े और लगभग गोलाकार गुबंद से आच्छादित है। ये मीनारें बुर्ज की तरह उठी हैं और इसके शीर्ष पर गुंबदनुमा छतरियां हैं। पूरा भवन लाल बलुए पत्थर से बना है, जिसमें संगमरमर की पट्टी दी गयी है। मेहराबों का अग्रभाग कम वक्र है परन्तु यह पूरे भवन की समग्र संरचना से अच्छी तरह मेल करता है।

बोध प्रश्न 4

1) औरंगजेब के समय की वास्तुशिल्प की गतिविधियों पर विचार कीजिए।

2) सफ़दर जंग के मकबरे पर एक टिप्पणी लिखिए।

13.8 सारांश

बाबर और हुमायूं ज्यादातर अपनी राजनैतिक समस्याओं में उलझे रहे। इसलिए उन्हें भवन निर्माण का बहुत कम अवसर मिला। हालांकि बाबर खुद बगीचों का प्रेमी था और अपने छोटे से शासनकाल में उसने भारत में कई बागान लगवाए थे। मुगलों की स्थापत्यगत गतिविधियों की असल शुरुआत अकबर के समय से हुई। उसकी इमारतें मुख्य रूप से लाल बलुए पत्थर से निर्मित हैं। अकबर के भवनों में मेहराबों और शहतीर शैलियों का सुन्दर सम्मिश्रण है। जहांगीर स्थापत्य की अपेक्षा चित्रकला में ज्यादा रूचि रखता था। हालांकि चित्रकला में रुचि होने के कारण समकालीन स्थापत्य में नयापन आया। चित्रकारी, पशुओं और फूल–पत्तियों के डिजाइनों का अलंकरण के लिए इस्तेमाल होने लगा और पित्राड्यूरा नामक नयी अलंकरण शैली जहांगीर के समय सामने आयी। शाहजहां के शासनकाल में मुगल स्थापत्य अपने उत्कर्ष पर पहुंच गया और इस समय संगमरमर का उपयोग ज्यादातर होने लगा। शाहजहां द्वारा निर्मित सफेद संगमरमर में ढला ताजमहल एक अनुपम और अमर कृति है। इसकी दोहरी – गुम्बद, मीनारें, बहु–पत्तीदार मेहराबें, आदि स्थापत्य कला के चरम उत्कर्ष की गवाह हैं। उसका उत्तराधिकारी औरंगजेब भवन निर्माण गतिविधि के प्रति उदासीन था। इसलिए उसके शासनकाल में कम भवनों का निर्माण हुआ है। औरंगजेब के बाद का काल पतन का काल था। अव्यवस्थित राजनैतिक माहौल में स्थापत्य में रुचि लेना मुगल शासकों के वश में नहीं था। इस माहौल में बड़ी इमारतों का निर्माण नहीं हो सकता था। इस काल का एकमात्र स्मारक दिल्ली स्थित सफदर जंग का मकबरा है।

मंदिर निर्माण का कार्य लगभग तीन सौ सालों के अंतराल के बाद पंद्रहवीं शताब्दी मे पुर्नविकसित हुआ। भारत के विभिन्न क्षेत्रों मे मंदिर फिर भी कोई एक समान रूप से पुर्नउत्थान नहीं दिखाते।

गुजरात और राजस्थान के क्षेत्र जैन संरक्षण के कारन पुर्नउत्थान हुए, जबकि अन्य जगहों पर स्थानीय शासकों ने अपने संसाधनों से मंदिर निर्माण कराए। बड़ी संख्या मे ये मंदिर समय के साथ जीवित रह गए जिससे हमे पुर्नउत्थान की एक झलक मिल जाती है । इसी काल खंड मे दो महत्वपूर्ण सार्वजनिक भवनों का विकास भी दिखता है– सराय और पुल, जिन्होंने यात्रा और व्यापार को आसान बनाया ।

सराय के कारण घुमक्कड़ यात्रियों को ठहरने का सुविधाजनक स्थान मिला और पुलों ने नदियों को पार करना आसान कर दिया ।

13.9 शब्दावली

कोष्ठिका	:	गुंबदाकार झिरी।
तोरण पथ	:	छतयुक्त मेहराबों की श्रृंखला।
मेहराब	:	ईंटों या पत्थर के खंडों से बना अपने बल पर खड़ा ढांचा जिसके ऊपर कोई ढांचा खड़ा किया जाता है।
बावली	:	सीढ़ीनुमा कुंआ।
ब्रैकेट	:	ताक दीवार का सहारा।
स्मारक समाधि	:	किसी की याद में बनायी गयी इमारत।
घुमावदार मेहराब	:	ऐसी मेहराब जो अंदर की ओर नोकदार हो।
स्तंभावलि	:	स्तंभों की एक पंक्ति।
सेतुमार्ग	:	पानी के ऊपर बना रास्ता।
बुर्जी	:	गुंबद का भीतरी भाग।
गुम्बद	:	एक चौकोर के ऊपर बनी उत्तल छत, भवन में अष्टकोणीय या वृत्ताकार स्थान
छज्जा	:	छत का निकला हुआ बाहरी हिस्सा।
रंगीन मेहराब	:	फूल–पत्तियों से अलंकृत मेहराब।
कलश	:	शिखर।
छतरी	:	एक खुली वीथी जिसकी छत स्तंभों के सहारे टिकी हुई हो।
खंभे	:	पत्थर और ईंट को जोड़कर बनायी गयी संरचना जो क्षैतिज भार उठाये रखते हैं।
पित्राड्यूरा	:	संगमरमर की खुदाई कर उसमें चमकीले पत्थरों को जड़ना और अलंकृत करना।
चंदोवा	:	आगे का हिस्सा।
गचकारी	:	चूने के प्लास्टर को खोदकर अलंकरण करना।
शहतीर	:	इस स्थापत्य संरचना में कड़ी और स्तंभों का उपयोग किया जाता है।
बुर्ज	:	भवन के साथ लगी मीनारें।

13.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) सही और गलत पर निशान लगाएँ:

क) गलत

ख) सही

ग) सही

घ) सही

2) उपभाग 13.2.2 देखें

3) उपभाग 13.2.2 देखें

बोध प्रश्न 2

सही और गलत पर निशान लगाएँ:

i) सही

ii) गलत

iii) सही

iv) सही

v) सही

उपभाग 13.4.2 देखें

बोध प्रश्न 3

उपभाग 13.5 देखें

भाग 13.5 देखें

भाग 13.6 देखें

बोध प्रश्न 4

उपभाग 13.7.1 देखें

उपभाग 13.7.2 देखें

इस इकाई के लिए कुछ उपयोगी अध्ययन सामग्री

Brown Percy. 1944. *Indian Architecture (Islamic Period).* Bombay: D.B. Taraporewala.

Tadgell Christopher. 1990. *The History of Architecture in India: From the Dawn of Civilization to the End of the Raj.* London: Architecture Design and Technology Press.

Harle J.C. 1994. *The Art and Architecture of the Indian Subcontinent.* New Haven: Yale University Press.

इकाई 14 चित्रकला और ललित कलाएं*

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 पृष्ठभूमि

14.2.1 पन्द्रहवीं शताब्दी में चित्रकला

14.2.2 आरंभिक मुगलकालीन चित्रकला

14.3 अकबर के शासनकाल में मुगल शैली का विकास

14.3.1 राजकीय चित्रशाला की स्थापना

14.3.2 शैली और तकनीक

14.3.3 मूलभूत विशेषताएं

14.4 जहांगीर और शाहजहां के शासनकाल में विकास

14.4.1 नयी शैलियों का उदय

14.4.2 विषयगत भिन्नताएं

14.4.3 अंतिम चरण

14.5 मुगल चित्रकला पर यूरोप का प्रभाव

14.6 ललित कलाएं

14.6.1 संगीत

14.6.2 नृत्य और नाटक

14.7 सारांश

14.8 शब्दावली

14.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

14.0 उद्देश्य

सांस्कृतिक मूल्य प्रायः चित्रकला और ललित कलाओं के माध्यम से प्रतिबिंबित होते हैं। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- सोलहवीं से अठारहवीं शताब्दी में चित्रकला के विकास का उल्लेख कर सकेंगे,
- चित्रकला की विभिन्न शैलियों और तकनीकों पर प्रकाश डाल सकेंगे, और
- मुगल दरबार और अन्य प्रान्तीय राज्यों में संगीत, नृत्य और नाटक आदि ललित कलाओं के विकास को रेखांकित कर सकेंगे।

*प्रो. रवीन्द्र कुमार, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

यह इकाई हमारे पाठ्यक्रम **ई एच आई 04 चित्रकला और ललित कलाएं खंड 8, इकाई 34** का पुनर्प्रकाशन है।

14.1 प्रस्तावना

16वीं शताब्दी, खासकर इसके उत्तरार्द्ध में भारत में चित्रकला और संगीत के क्षेत्र में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। अकबर ने अपने शासन के दौरान ललित कलाओं के विकास को उदारतापूर्वक प्रोत्साहित किया। उसके उत्तराधिकारियों ने भी इन कलाओं में गहन रूचि दिखाई और 17वीं शताब्दी का अंत होते–होते मुगल दरबार में चित्रकला और संगीत अपने अभूतपूर्व उत्कर्ष पर पहुंच गया।

इसके साथ–साथ दक्खन में मुगल प्रभाव से काफी कुछ स्वतंत्र चित्रकला और संगीत की एक अलग परम्परा विकसित हो रही थी। बाद में, 18वीं शताब्दी में मुगल दरबार के स्थान पर राजस्थान और पंजाब जैसे क्षेत्रीय राज्य चित्रकला को संरक्षण देने लगे।

इस इकाई में हम चित्रकला और विभिन्न ललित कलाओं की इन विभिन्न परम्पराओं का अध्ययन करेंगे।

14.2 पृष्ठभूमि

इस खंड में हम मुग़ल पूर्व भारत में चित्राकल के विकास की चर्चा करेंगे जिसकी विस्तार से चर्चा **बी एच आई सी 107 की इकाई 19** में की गयी है।

14.2.1 पन्द्रहवीं शताब्दी में चित्रकला

अभी तक यह विश्वास किया जाता था कि दिल्ली सल्तनत में चित्रकला का विकास नहीं हुआ और मुगल काल में तैयार हस्तलिखित दस्तावेजों में प्राप्त चित्रकला की परंपरा वस्तुतः कई शताब्दियों के बाद (दसवीं शताब्दी के अंत के बाद) पुनः प्रारंभ हुई। एक प्रकार से यह चित्रकला का पुनरुत्थान था। परन्तु नई खोजों और शोधों से कुछ नये तथ्य सामने आये हैं:

- 13वीं और 14वीं शताब्दियों में भित्ति चित्रों की और कपड़ों पर चित्रकारी करने की जीवंत परंपरा थी,
- 14वीं शताब्दी तक कुरान की आयतों को चित्र रूप से प्रस्तुत करने की परंपरा साथ–साथ चल रही थी, और
- संभवतः 15वीं शताब्दी के आरंभ में फारसी और अवधी भाषा की पांडुलिपियों में चित्रकारी की परम्परा की भी जानकारी मिलती है।

15वीं और 16वीं शताब्दी में तैयार की गई कई महत्वपूर्ण पांडुलिपियों की हमें जानकारी मिलती है जिनमें चित्र भी बने है। इनमें से कुछ कृतियां क्षेत्रीय राजाओं के दरबार में तैयार की गई थी और कुछ का निर्माण स्वतंत्र संरक्षकों द्वारा करवाया गया था। पहली कोटि में निम्नलिखित की चर्चा की जा सकती है:

क) *सादी की बोस्तां* में हाजी महमूद के बनाए चित्र,

ख) *नेमत नामा* (पाककला की पुस्तक) और

ग) मोहम्मद शादिआबादी कृत *मिफताह अल फुज़ला*।

15वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मांडू (मालवा) में इन पांडुलिपियों में चित्रों का समावेश किया गया था। लोरे चंदा (अवधी) इस प्रकार की चित्रित पांडुलिपि का उत्तम उदाहरण है जिसका संबंध दरबार से नहीं था बल्कि इसे अपने संरक्षक के लिए तैयार किया गया था।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भारत में मुगलों के आगमन से ठीक पहले चित्रित पांडुलिपियों की परंपरा मौजूद थी। कागज के उपयोग के कारण इस प्रकार की चित्रकारी संभव हो सकी।

14.2.2 आरंभिक मुगलकालीन चित्रकला

भारत में मुगल शासन के संस्थापक बाबर (1526) ने केवल चार वर्षों तक राज्य किया। चित्रकला के विकास में उसका कोई योगदान नहीं रहा। उसके उत्तराधिकारी हुमायूं का भी अधिकांश समय अपने विरोधियों से लड़ते हुए बीता और 1540 में शेरशाह ने उसे भारत से बाहर खदेड़ दिया। अपने निष्कासन के दौरान वह ईरान के शाह तहमस्प के दरबार में रहा और वहीं चित्रकला के प्रति उसके रुझान का विकास हुआ। वह वहां की कला से इस कदर प्रभावित हुआ कि उसने ईरान के दो कलाकारों मीर सैयद अली और ख्वाजा अब्दुस समद से अपने लिए पांडुलिपियां तैयार करने के लिए निवेदन किया। भारत लौटने पर हुमायूं उन्हें अपने साथ लेता आया।

मुगलकालीन चित्रकला के विकास में हुमायूं का योगदान महत्वपूर्ण है। हुमायूं के शासनकाल में मुगल चित्रकला की कई महत्वपूर्ण विशेषताओं का उद्भव हुआ। *तैमूर घराने के राजकुमार* शीर्षक से बनाया गया चित्र हुमायूं के काल की अनुपम देन है। यह 1550 ई. के आसपास बनाया गया था। इसे कपड़े पर बनाया गया है। इसकी लंबाई 1.15 वर्ग मीटर है। ईरानी चित्रकला में भी इतना लंबा चित्र मिलना अपवाद था। ऐसा माना जाता है कि यह मंगोल परम्परा की देन है जिसमें वे अपने तम्बुओं पर चित्र बनाया करते थे।

चित्र-1: नेमत नामा
साभार : https://commons.wikimedia.org//wiki/file:At-nama_(Book_of_Delicacies).jpg

14.3 अकबर के शासनकाल में मुगल शैली का विकास

अकबर का कलाओं के प्रति अत्यधिक रुझान था। मुगल चित्रकला का अन्य शैलियों से भिन्न एक अलग स्कूल के रूप में स्थान प्राप्त करना अकबर की इसी रुचि का परिणाम था।

चित्रकला पर अकबर के विचार

किसी चीज की प्रतिकृति बनाने को तस्वीर कहते हैं। महामहिम ने अपनी युवावस्था से ही इस कला के प्रति गहरी रुचि दिखाई थी और इसे सभी प्रकार का प्रोत्साहन दिया

था, क्योंकि वे उसे अध्ययन के साथ–साथ तृप्ति का साधन भी मानते थे। इस प्रकार यह कला फलने–फूलने लगी और कई चित्रकारों ने खूब नाम कमाया। दरोगा और लिपिक महामहिम के समक्ष प्रत्येक सप्ताह विभिन्न चित्रकारों के चित्र पेश किया करते थे, उसके बाद वे (अकबर) उन्हें उनके कार्य के अनुसार पुरस्कार देते थे या वेतन में प्रतिमाह वृद्धि करते थे। चित्रकारी के लिए आवश्यक सामग्री में (इस समय) काफी प्रगति हुई। इन सामानों का मूल्य बड़ी सावधानी से आंका जाता था। रंग के मिश्रण की तकनीक में विशेष रूप से विकास हुआ था। इस प्रकार चित्रों की बनावट में अभूतपूर्व विकास हुआ। इस काल में बेहतरीन चित्रकार हुए और उनकी उत्कृष्ट कलाओं को यूरोप के विश्वविख्यात चित्रकारों की रचनाओं के समक्ष रखा जा सकता है। सूक्ष्मता से चित्रण, सुंदर बनावट और उन्मुक्त प्रस्तुति आदि से इस युग की चित्रकला अतुलनीय हो गई, चित्रकारों ने जड़ पदार्थ में भी जीवन डाल दिया। इस युग में सैकड़ों चित्रकार चित्रकला के महारथी थे, अच्छे और उत्कृष्ट कलाकारों की संख्या काफी बड़ी थीं। यह बात विशेषतः हिंदुओं के परिप्रेक्ष्य में सही है, उनके चित्र कल्पना के अनुपम नमूने हैं। पूरे विश्व में उन जैसे कम कलाकार ही पाए जाते हैं।

स्रोतः (अबुल फजल, आइन–ए–अकबरी)

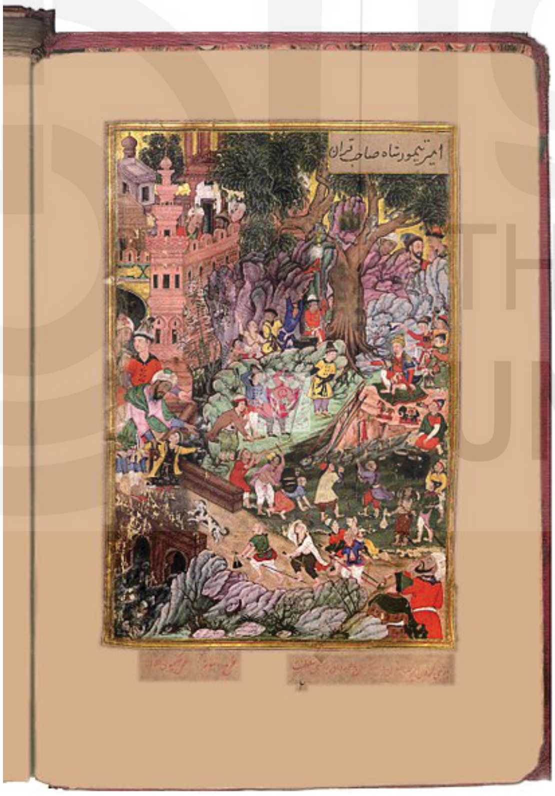

चित्र-2: तारिख–ए खानदान–ए तैमूरियां
साभार : https://commons.wikimedia.org//wiki/file:Childhood_of_Timur.jpg#file

14.3.1 राजकीय चित्रशाला की स्थापना

अकबर के शासनकाल में पहला प्रमुख पांडुलिपि चित्रण *हमजा नामा* की चित्रकारी थी। इसकी शुरुआत 1562 में हुई जिसके लिए कई दरबारी चित्रकार नियुक्त किए गए।

चित्रकारों के कार्य करने के स्थान को तस्वीर खाना कहा जाता था। हालांकि अबुल फजल ने केवल सत्रह कलाकारों का उल्लेख किया है, परन्तु हमारी जानकारी के अनुसार यह

संख्या काफी बड़ी थी। एस. पी. वर्मा (*आर्ट एंड मैटीरियल कल्चर इन द पेंटिंग्स ऑफ अकबर्स कोर्ट*, विकास प्रकाशन, नई दिल्ली, 1978) ने अकबर की शिल्पशाला में काम करने वाले 225 कलाकारों की सूची तैयार की है। ये कलाकार कई जगहों से आए थे परन्तु इनमें हिंदुओं की संख्या अधिक थी। एक रोचक तथ्य यह है कि निम्न जाति के कलाकारों को भी उनकी प्रतिभा के आधार पर राजकीय कला का दर्जा दिया गया था। इस दृष्टि से पालकी ढोने वाले कहार के बेटे दसवंत का उल्लेख विशेष रूप से किया जाना चाहिए। कलाकारों की सहायता के लिए अनेक मुलम्मासाजी करने वाले और पृष्ठ तैयार करने वाले होते थे। कलाकार नकद वेतन प्राप्त कर्मचारी थे। एस. पी. वर्मा का मानना है कि शिल्पशाला में न्यूनतम वेतन 600 से 1200 दाम (40 दाम = 1 रूपया) था।

चित्र-3: बाबरनामा
साभार: https://commons.wikimedia.org//wiki/File:A_banquet_for_Babur.jpg

कुछ चित्रों पर दो चित्रकारों के नाम पाए गए हैं। यहां तक कि कभी–कभी तीन चित्रकार मिलकर चित्र बनाते थे। *अकबरनामा* का एक चित्र चार चित्रकारों ने मिलकर बनाया था। इस प्रकार चित्रकला एक सामूहिक कार्य के रूप में भी सामने आती है। चित्र का आरेख निर्माण और रंगाई, चित्रकारों के दो अलग–अलग समूहों द्वारा की जाती थी। जहाँ तीन कलाकार काम कर रहे होते थे, वहां एक कलाकार बाहरी रूपरेखा बनाता था, दूसरा इसके चेहरे को और तीसरा बाकी हिस्से को रंगता था। हमें इस बात का पता नहीं है कि वह जटिल कार्य किस ढंग से सम्पन्न होता था। संभवतः इस प्रकार के दल में आरेखन और रंगाई अलग–अलग कलाकारों द्वारा की जाती होगी।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है लिपिकों की सहायता से दरोगा शिल्पशाला की देखरेख करता था। कलाकारों को चित्रकारी का सामान उपलब्ध कराना और उनके कार्य की प्रगति

पर नजर रखना उसका मुख्य दायित्व था। वह समय–समय पर सम्राट के सामने कलाकारों की कृतियों को पेश किया करता था।

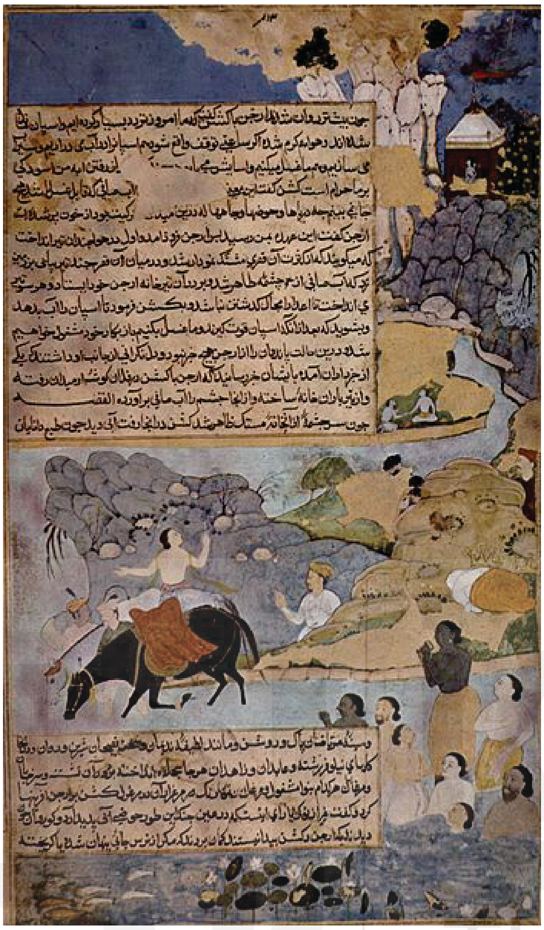

चित्र-4: रज़्मनामा
साभार: https://commons.wikimedia.org//wiki/File:Meister_des_Razm-N%C3%A2ma-Manuskripts_001.jpg

14.3.2 शैली और तकनीक

अकबर के दरबार में बनाए गए चित्र मुगल कला की प्रतिनिधि रचनायें हैं, परन्तु इस कला की शैली और तकनीक में बराबर विकास होता रहा। आरंभिक चरण के चित्रों पर ईरानी प्रभाव स्पष्ट है, जिसकी मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

- सममित संघटन,
- आकृतियों की प्रतिबंधित गतिशीलता,
- चित्रों की रेखाओं की उत्कृष्टता,
- स्थापत्यगत स्तंभों का सतही चित्रण, और
- भवनों का आलंकारिक चित्रण।

बाद में चित्रकला ने अपना एक विशेष स्वरूप निर्मित किया। मुगल कला का वह रूप ईरानी और भारतीय परम्पराओं से निर्मित हुआ, जिसमें यूरोपीय प्रभाव की भी थोड़ी बहुत झलक देखने को मिलती है।

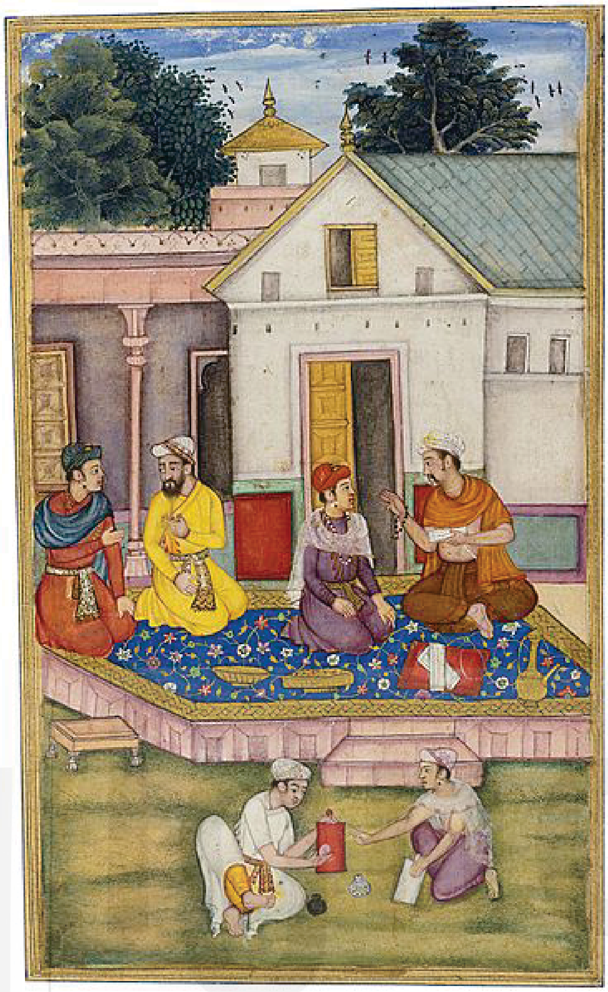

चित्र-5: रज़्मनामा
साभार: https://commons.wikimedia.org//An_illustration_from_a_Razmnama_manuscript.jpg

14.3.3 मूलभूत विशेषताएं

अकबर द्वारा शिल्पशाला स्थापित किए जाने के पन्द्रह वर्षों के भीतर मुगल शैली की अपनी पहचान बन गई। अगले एक दशक में अर्थात 1590 तक इसने एक विशेष स्वरूप ग्रहण कर लिया जिसकी प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं:

- प्रकृतिवाद और लय,
- प्रतिदिन प्रयोग किये जाने वाले भारतीय परिधानों का चित्रण,
- प्रमुख चित्र की पृष्ठभूमि में कई उप–दृश्यों का चित्रण,
- अभूतपूर्व क्रियाशीलता तथा अत्याधिक गतिशीलता, तथा
- फूल–पत्तियों और पेड़–पौधों का अद्भुत चित्रण।

यहां इस तथ्य पर बल दिया जाना चाहिए कि अकबर के काल में निखरी चित्रकला में भारतीय और ईरानी शैली का तो समन्वय था ही साथ ही साथ इसकी अपनी मौलिकता भी थी। इन चित्रों में गति और क्रिया का विशेष महत्व है जो न तो भारतीय पूर्व मुगलकालीन कला में मिलता है और न ही ईरान में ही ऐसी कला का प्रचलन था (*आर्ट एंड कल्चर*, सं. ए. जे. कैसर और एस. पी. वर्मा, जयपुर, 1993)।

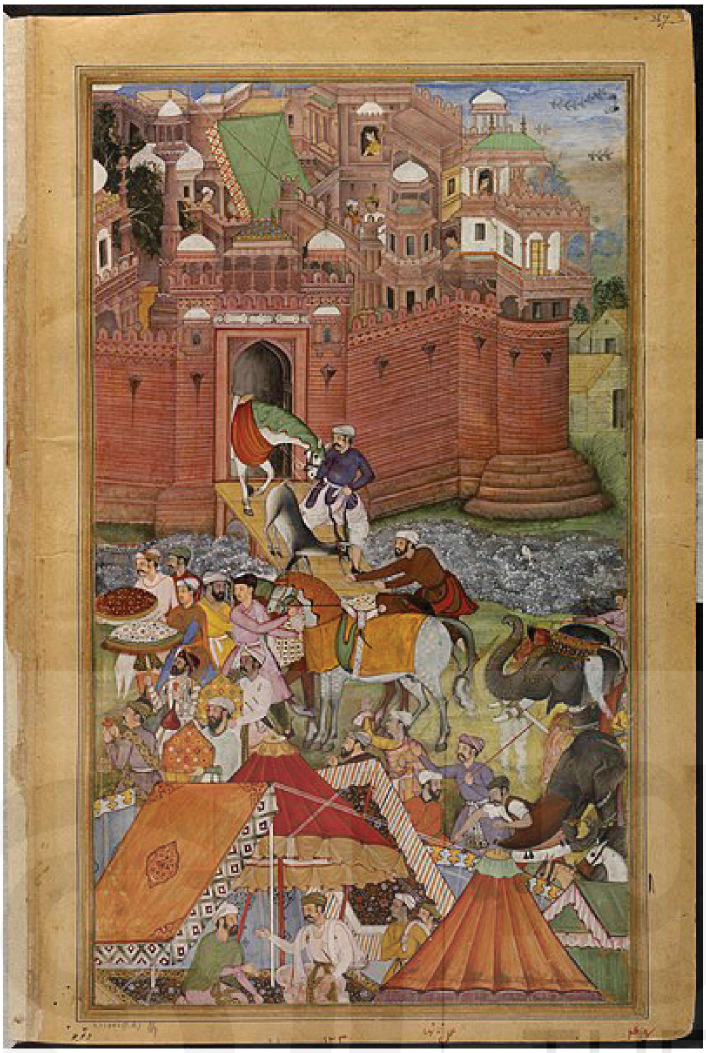

चित्र-6: अकबरनामा
साभारः https://commons.wikimedia.org//wiki/File/:Episode_in_Karah._ Akbarnama._ V%26A_Mus_IS_2.51-1896.jpg

अकबर के काल में बने चित्र ऐतिहासिक विषयवस्तु के कारण फारसी परम्परा के साथ–साथ भारतीय शैली से भी अपनी विशिष्टता प्रदर्शित करते हैं। मुख्य रूप से प्रयुक्त दो विषयवस्तु हैं :

- दरबार की प्रतिदिन की घटनाओं का चित्रण, और
- छवि चित्रण।

हालांकि ईरान में छवि चित्रण बनाने की परम्परा थी, परन्तु ऐतिहासिक घटनाओं के चित्रण का आयाम बिल्कुल नया था। घटना ऐतिहासिक हो या चित्रकार की शुद्ध कल्पना, शिकार या युद्ध के दृश्यों का अंकन करते समय चित्रकार एक बने बनाए सूत्र का प्रयोग करता था, जैसा कि 1580 के आसपास चित्रांकित किए गए *तैमूरनामा* में किसी खास घटना का चित्रण करते हुए भी चित्रकार घटना से असंबद्ध दिखाई देता है। इसमें कलाकारों ने अपने मन में पूर्व स्थापित परिकल्पना के अनुसार किलों का आकार, नदी पार करने, दर्शकों अथवा युद्ध संबंधी दृश्यों का चित्रण किया है। *अकबरनामा* में भी कलाकारों ने इन दृश्यों की नकल की है या उन्हें अपने अनुसार ढाल लिया है। कोई दृश्य पहले से उपलब्ध न होने की स्थिति में चित्रकार ही एक दृश्य की योजना करता प्रतीत होता है और कुछ ही चित्रकार इस प्रकार के नूतन प्रयोग करने में सक्षम दिखाई देते हैं।

चित्र-7: जहांगीर का पोर्ट्रेट
साभार: https://commons.wikimedia.org//wiki/File/:15_Abu%271_Hasan_ Jahangir_ with_a_ Potrait_of_Akbar_ 1614%D0%B3_Musee_Guimet,_Paris_-%D0%BA%D0%BE% D0% B8% D1%8F.jpg

हमने यहां ऐतिहासिक क्रम में इस काल में चित्रांकित प्रमुख ग्रंथों का उल्लेख किया है।

ग्रंथ	:	तिथि
हमजानामा	:	लगभग 1562–1580 ई.
अनवार ए सुहेली	:	1570 ई.
तूतीनामा	:	लगभग 1570–1580 ई.
तारीख ए खानदान ए तैमूरिया	:	लगभग 1570–1590 ई.
बाबरनामा	:	लगभग 1570–1600 ई.
अकबरनामा	:	लगभग 1570–1600 ई.
तारीख ए अल्फी	:	लगभग 1570–1600 ई.
रज्मनामा	:	1582 ई.

THE PEOPLE'S UNIVERSITY

चित्र-8: शाहजहाँ का पोर्ट्रेट

साभार: https://commons.wikimedia.org//wiki/File/:Emperor_Shah_Jahan_1628.jpg

बोध प्रश्न 1

1) आरंभिक मुगल शासकों के अधीन चित्रकला के विकास पर 50 शब्दों में टिप्पणी कीजिए?

2) राजकीय शिल्पशाला में चित्रकारों द्वारा सामूहिक चित्रण की अवधारणा का वर्णन कीजिए।

3) मुगलकालीन शैली की चार विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

14.4 जहांगीर और शाहजहां के शासनकाल में विकास

जहांगीर और शाहजहां के काल में मुगलकालीन चित्रकला अपने उत्कर्ष पर पहुंच गई। जहांगीर जब राजकुमार था तब से ही वह चित्रकारी में रुचि रखता था। अकबर की विशाल शिल्पकला से अलग उसकी अपनी चित्रशाला थी। जहांगीर शिकार के दृश्यों, पक्षियों और फूलों की चित्रकारी पसंद करता था। उसने छवि चित्रण की परम्परा भी जारी रखी। शाहजहां के समय की चित्रकारी में रंगों की चमक बढ़ गई और अलंकरण के लिए सोने का उपयोग होने लगा। आगे आने वाले उपभागों में हम जहांगीर और शाहजहां के शासनकाल में मुगल चित्रकला की नयी शैलियों और विषयगत विविधताओं का अध्ययन करेंगे।

14.4.1 नई शैलियों का उदय

जहांगीर के शासनकाल (1605–27) में छवि चित्रण की तुलना में पांडुलिपि चित्रण का महत्व कम हो गया। एम. सी. बीच (*मुगल एंड राजपूत पेंटिंग*, केम्ब्रीज विश्वविद्यालय प्रेस, 1992) के अनुसार जहांगीर चित्रकारी में व्यक्तिगत रुचि लेता था और उसका हस्तक्षेप राजकीय चित्रशाला के कार्यकलापों में भी था। स्पष्टतः कला संबंधी निर्णय स्वयं सम्राट के होते थे। परिणामस्वरूप, चित्रकला में वह अपने द्वारा प्रतिपादित शैली का समावेश कर सका। 17वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में मुगल चित्रकला की शैली में दो नये तत्व शामिल हुए। ये इस प्रकार हैं:

- जहांगीर की चित्रकला में रूपवादी शैली की प्रधानता है। इसमें चित्र को यथार्थवादी बनाने और समकालीन यथार्थ को हू–ब–हू चित्रित करने का प्रयत्न किया गया है।
- इस काल के चित्रों में चौड़े हाशिए का प्रयोग किया गया, जिन्हें फूल–पत्तियों, पेड़–पौधों और मनुष्य की आकृतियों से भव्य रूप से अलंकृत किया गया है।

14.4.2 विषयगत भिन्नताएं

जहांगीर प्रकृति प्रेमी था। जब भी वह अनूठे जानवर या पक्षी देखता था तो उसका कलाकार मन तत्काल उसे चित्रित कराने के लिए बेचैन हो उठता था। उसके जमाने में पक्षियों और पशुओं का बड़ा ही जीवंत चित्रण हुआ है।

शाहजहां स्थापत्य कला का महान संरक्षक था, परन्तु उसने चित्रकला की भी उपेक्षा नहीं की। उसके समय में भी छवि चित्रण बनाये जाते थे, चित्रों का संग्रह तैयार किया जाता था और पांडुलिपि चित्रण बनाये जाते थे। इसके अलावा प्रणय दृश्यों और महिलाओं के चित्र भी बनने लगे। इस काल की चित्रकला में पशु के अध्यारोपण और कलाबाजी के दृश्यों को भी स्थान मिला।

14.4.3 अंतिम चरण

शाहजहां के उत्तराधिकारी औरंगजेब के काल में कलाएं उपेक्षित रहीं। चित्रकारी पूरी तरह रुकी नहीं, परन्तु इसे सम्राट का संरक्षण प्राप्त होना समाप्त हो गया और उसका क्षेत्रवादी स्वरूप मुखर हो गया। राजपूत राजाओं के दरबारों में कुलीनों और उनके संबंधियों के छवि चित्रण बनाए जाते रहे। चित्रकला संबंधी राजपूतों के अनेक दस्तावेज (तस्वीरखाना दस्तावेज) राजस्थान के राज्य अभिलेखागार, बीकानेर में आज भी उपलब्ध हैं। वहां मुगल सम्राट के

अभियान संबंधी कुछ रोचक चित्र रखे हुए हैं। इन चित्रों में चित्रकार की कला उत्तम है, परन्तु अब चित्रकारी औपचारिकता मात्र रह गई और उसमें पहली जैसी जीवंतता नहीं रह गई।

बाद में मौहम्मद शाह (1719–48 ई.) के शासनकाल में प्रणय के आकर्षक दृश्यों की चित्रकारी शुरू हुई। परन्तु इस समय तक राजकीय चित्रशाला के अधिकांश चित्रकार प्रांतीय शासकों के दरबारों में जा चुके थे। मुगल कला के पतन से प्रांतीय शैली को लाभ पहुंचा।

14.5 मुगल चित्रकला पर यूरोप का प्रभाव

इस इकाई में पहले ही मुगल चित्रकला की मिली–जुली प्रकृति का उल्लेख किया जा चुका है। अपने बाद के चरण में, विशेषकर 17वीं शताब्दी के दौरान मुगल चित्रकला पर यूरोपीय कला का प्रभाव दिखाई देता है। मुगल चित्रकारों ने यूरोप की चित्रकला से विषयवस्तु के साथ–साथ तकनीक को भी अपनाया। ए. जे. कैसर के अनुसार मुगल चित्रकार यूरोपीय चित्रकला की नकल किया करते थे और कभी–कभी इसे पुनर्व्याख्यायित भी किया करते थे। इसके साथ–साथ यूरोप के चित्रकारों के चित्रों के संग्रह जहांगीर, दारा शिकोह और कई मुगल कुलीनों के पास मौजूद थे (ए. जे. कैसर, *इंडियन रेसपोंस टु यूरोपीयन टेक्नॉलाजी एंड कल्चर*, 1982)।

यूरोपीय चित्र जब मुगल दरबार में लाये गए तो आरंभ में बहुत से चित्रकार इसकी नकल करने को ओर प्रवृत हुए। समकालीन यूरोपीय यात्री बताते हैं कि इस प्रकार की नकल में एक प्रकार की सहजता थी। परन्तु मुगल चित्रकारों ने यूरोपीय चित्रकला की विषयवस्तु को अपनाकर नए प्रयोग भी किए। मुगल चित्रकला में त्रिआयामी चित्रों का भी विशेष महत्व है। स्पष्टता इन पर यूरोपीय तकनीक का प्रभाव है। मुगल चित्रकारों ने यूरोपीय चित्रकला के प्रकाश और छाया के प्रभाव को अंकित करने की शैली भी अपनाई। इनका उपयोग अधिकतर रात के दृश्यों के अंकन के लिए होता था। प्रभा मंडल, परों वाले देवदूत और गरजते बादलों का अंकन भी यूरोपीय चित्रकला के प्रभाव का प्रतिफलन था। परन्तु यूरोप की महत्वपूर्ण तैल चित्रकला की तकनीक की ओर मुगल आकृष्ट नहीं हुए। अतैव इस काल में तैल चित्रों का सर्वथा अभाव रहा।

14.6 ललित कलाएं

16वीं–18वीं शताब्दी में मुगलों के द्वारा शासित क्षेत्र की अपेक्षा प्रान्तीय क्षेत्रों में ललित कला का ज्यादा विकास हुआ, परन्तु ललित कलाओं के ऐतिहासिक विकास की सूचना कम ही मिलती है। आगे जो वर्णन प्रस्तुत किया जा रहा है, वह इधर–उधर बिखरी छुट–पुट सूचनाओं पर आधारित है।

14.6.1 संगीत

इस काल में क्षेत्रीय राज्य संगीत अध्ययन और विकास के केन्द्र बन गए। दक्षिण भारत में 16वीं शताब्दी के आसपास जनक और जन्य रागों जैसे मूल और मूलाश्रित रागों का प्रचलन था। इसका सर्वप्रथम उल्लेख *स्वरमेल कलानिधि* नामक ग्रंथ से मिलता है। इसका लेखन 1550 ई. में कोडबिंदु (आन्ध्र प्रदेश) के रामामात्य नामक लेखक ने किया था। इसमें 20 जनक और 64 जन्य रागों का वर्णन किया गया है। तत्पश्चात् सोमनाथ ने 1609 ई. में *रागविबोध* की

रचना की जिसमें उत्तर भारत की कुछ शैलियों का समावेश किया गया है। 17वीं शताब्दी के मध्य में तंजाउर में बेंकटामकिन ने *चतुरबंडी प्रकाशिका* नामक एक प्रमुख विवेचना संगीत पर लिखी (लगभग 1650 ई.)। यह पुस्तक कर्नाटक संगीत का आधार ग्रंथ बन गई।

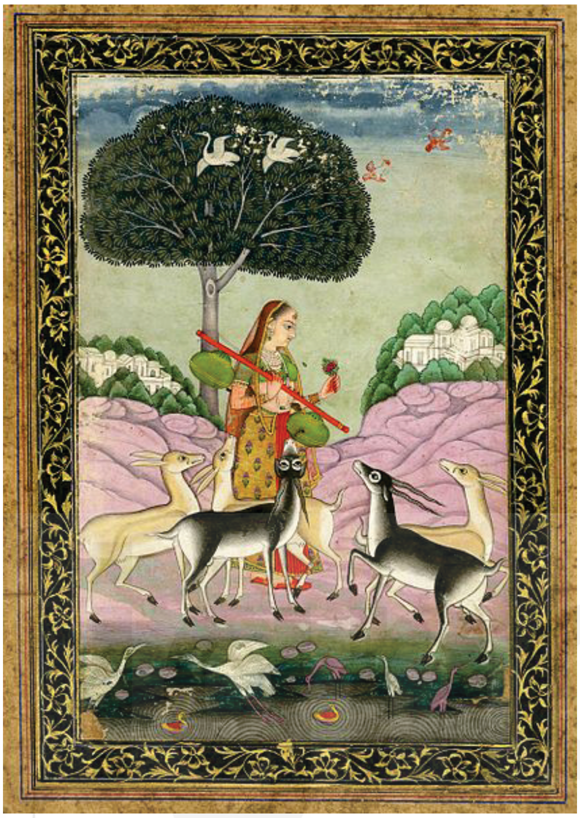

चित्र-9: टोडीरागिनी
साभार: https://commons.wikimedia.org//wiki/File:An_illustration_of_Todi_Ragini_from_a_Ragamala_series_ca._1750_Jaipur_British_Museum._London.jpg

उत्तर भारत का संगीत मुख्यतः भक्ति आंदोलन से प्रभावित था। 16वीं शताब्दी के संत कवियों की रचनाएं अधिकांशतः संगीत पर आधारित होती थीं। स्वामी हरिदास ने वृंदावन में संगीत को खूब बढ़ावा दिया। उन्हें अकबर के प्रसिद्ध दरबारी संगीतकार तानसेन का गुरू भी माना जाता है। तानसेन स्वयं उत्तर भारतीय संगीत का महान उद्गाता था। उसे मियां की मल्हार, मियां की तोडी और दरबारी जैसे कुछ प्रमुख रागों का जन्मदाता माना जाता है। ग्वालियर के राजा मान सिंह (1486–1517 ई.) ने उत्तर भारत के संगीत की एक प्रमुख शैली ध्रुपद के विकास और परिष्कार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

18वीं शताब्दी में मुगल सम्राट मौहम्मद शाह के दरबार में संगीत की उत्तर भारतीय शैली को अद्भुत प्रोत्साहन मिला। उसके दरबार के दो संगीतकार, सदारंग और अदारंग ख्याल गायकी के महान प्रवर्तक थे। इसी समय तराना, दादरा और गजल जैसे संगीत के नए रूप सामने आए। इसके अतिरिक्त दरबारी संगीत में लोक संगीत को भी शामिल किया गया। इस श्रेणी में ठुमरी और टप्पा का उल्लेख किया जा सकता है। ठुमरी में लोक संगीत के मानदंडों का उपयोग होता है और टप्पा पंजाब के ऊँटवानों द्वारा गाये जाने वाले संगीत से विकसित हुआ।

एक बात गौर करने की है कि दक्षिण भारतीय संगीत काफी कुछ नियमबद्ध और ग्रंथाधारित था, परन्तु उत्तर भारतीय संगीत में इस परम्परा का अभाव होने से इसमें काफी स्वच्छंदता पाई जाती थी। इस कारण उत्तर भारत में विभिन्न रागों को मिलाकर अनेक प्रयोग किए गए। आज भी उत्तर भारतीय संगीत में यह उदारता मौजूद है।

14.6.2 नृत्य और नाटक

मध्यकालीन नृत्य और नाटक के संबंध में तत्कालीन ग्रंथों में बहुत कम वर्णन मिलता है। संगीत, नृत्य और नाटक तथा सृजनात्मक साहित्य की प्रमुख पुस्तकें भारत की विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं में मुख्य स्रोत के रूप में उपलब्ध है।

इससे संबंधित पुस्तकें मुख्य रूप से उड़ीसा, दक्षिण भारत और मुगल मौहम्मद शाह के दरबार में संग्रहित की गई। उड़ीसा में 17वीं शताब्दी के दौरान महेश्वर महापात्र और रघुनाथ द्वारा क्रमशः दो पुस्तकें *अभिनय चंद्रिका* और *संगीत दामोदर* की रचना की गई। दक्षिण भारत में *आदि भारतम*, *भारत रत्नव*, तुलाजराजा (1729–1735 ई.) कृत *नाटयवेदागम्* और बालराम बरमन (1753–1798 ई.) कृत *बलराम भारतम्* प्रमुख ग्रंथ हैं। मौहम्मद शाह के दरबार में नृत्य और संगीत पर *संगीत मलिका* नामक ग्रंथ लिखा गया।

बोध प्रश्न 2

1) 17वीं शताब्दी के दौरान मुगल चित्रकला में हुए विषयगत परिवर्तनों का वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

2) मुगल चित्रकारों ने यूरोपीय चित्रकला के किन–किन भावों को अपनाया?

....

....

....

....

14.7 सारांश

इस इकाई में आपने मुगलों के अधीन चित्रकला और ललितकला के विकास का अध्ययन किया। इस कला की कलाओं में कई प्रकार के तत्वों का मिश्रण हुआ। चित्रों में ईरानी प्रभाव के साथ–साथ देशी परम्पराओं का भी उपयोग हुआ। 17वीं शताब्दी के दौरान इस पर यूरोपीय चित्रकला का भी प्रभाव पड़ा।

संगीत, नृत्य और नाटक को भी राजकीय संरक्षण प्राप्त हुआ। तानसेन ने अकबर के दरबार की शोभा बढ़ाई और संगीत को असीम ऊंचाई तक पहुंचा दिया। तुलनात्मक दृष्टि से इस काल में नृत्य और नाटक का विकास आरंभिक अवस्था में था।

14.8 शब्दावली

भित्ति चित्र : दीवार पर बने चित्र।

पट्टिका : चित्रकारी के लिए चित्रकार द्वारा रंग रखने और मिलाने के लिए उपयोग की जाने वाली चौकोर पट्टिका।

आरेख : रेखा चित्र।

मुलम्मासाज : चित्रों के ऊपर सोने की एक लगभग पारदर्शी परत चढ़ाने वाले।

छवि चित्रण : विशिष्ट व्यक्तियों के चेहरे अथवा आदमकद शरीर का चित्रण।

14.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखे उपभाग 14.2.2

2) देखे उपभाग 14.3.1

3) देखे उपभाग 14.3.3

बोध प्रश्न 2

1) देखे उपभाग 14.4.2

2) प्रभामंडल, परों वाले देवदूत और गरजते बादल। देखे भाग 14.5

इस इकाई के लिए कुछ उपयोगी अध्ययन सामग्री

Basham, A.L. (ed.). 1975. *Cultural History of India.* Oxford: Oxford University Press.

Beach, M.C. 1982. *Mughal and Rajput Paintings*, Cambridge: Cambridge University Press

Brown Percy. 1942/1981. *Indian Architecture* (Islamic Period). 7th Reprint of the 1956 edition. Bombay: D. B Taraporewala Sons & Company. Pvt-Ltd.

Qaisar, A.J. 1982. *Indian Response to European Technology & Culture*. New Delhi,: Oxford University Press.

Verma, S.P. 1978. *Art and Material Culture in the Paintings of Akbar's Court.* New Delhi: Vikas

इकाई 15 चित्रकला: विविध परंपराएँ*

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 भूमिका

15.2 किशनगढ़ चित्रकला–राजपूताना

15.3 पहाड़ी चित्रकला–पंजाब के पर्वतीय क्षेत्र

15.4 दख्खिन में चित्रकला का संरक्षण

15.5 सारांश

15.6 शब्दावली

15.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

15.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम भारतीय उपमहाद्वीप के 16 वीं शती से मध्य अठारहवीं शती के दौरान प्रमुख क्षेत्रीय राज्यों में बनाई गई चित्रकलाओं का अध्ययन करेंगे। यह पारम्परिक शैलीगत पहलुओं पर ध्यान केन्द्रित करने के साथ भारतीय चित्रकला पर वर्तमान विषयगत शोध की भी स्थिति स्पष्ट करेगा। इस इकाई में दी गई जानकारी के अध्ययन के पश्चात् यह समझने में आसानी हो जायेगी कि:

(1) चित्रकला के मुख्य क्षेत्रीय केन्द्र

(2) मुगल चित्रकला और क्षेत्रीय आंचलिक शैली का आपसी सम्बन्ध और किस प्रकार शाही शैली कलाकारों द्वारा प्रान्तों तक पहुँचाई गई।

(3) कलाकारों की संस्थायें उनके कार्य और विभिन्न क्षेत्रों में उनकी गतिविधियाँ।

(4) इन क्षेत्रीय परम्पराओं को जीवित और बनाये रखने में मिलने वाले संरक्षण का महत्व।

15.1 भूमिका

1605 तक अकबर ने उत्तर, पश्चिमी और मध्य भारत के अधिकांश भाग में मुगल आधिपत्य मजबूत कर लिया था। राजनैतिक प्रभुत्व के साथ ही मुगलों ने कला और वास्तुकला के क्षेत्र में एक विशिष्ट सौन्दर्य बोध का खाका तैयार किया। मुगल राजशाही का केन्द्र–बिन्दु मुगलिया सोच और विशेषज्ञता रही है जिसमें शाही पुस्तकालय तथा उससे जुड़े तस्वीरखाना का संरक्षण मुख्य रहा है। मुगल बादशाह चित्रकला के विवेकी संरक्षक बनकर उभरे। अकबर,

*डॉ. शैलका मिश्रा, डायरेक्टर, जगदीश एंड कमला मित्तल म्यूजियम ऑफ इंडियन आर्ट, हैदराबाद

अस्वीकरण: इस इकाई में उपयोग की गई सभी छवियां केवल गैर–व्यावसायिक शैक्षिक उद्देश्यों के लिए हैं। जैसा कि संकेत दिया गया है, सभी छवियों का कॉपीराइट संस्थानों के पास रहता है। छवियों को संबंधित संस्थानों की अनुमति के बिना किसी भी रूप में पुनः प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

जहांगीर और शाहजहाँ अपने मनसबदारों (सामन्तों) को संरक्षण में मुगल आदर्शों को अपनाने के लिये उत्साहित करते थे। पूर्वी और पश्चिमी भारत में मुगलों से पूर्व हस्त चित्रकला का चलन था, मुगल काल की अवधि में चित्रकला सम्बन्धी विषयों और उनके चित्रण में उल्लेखनीय बदलाव देखा गया। संरक्षण का स्वभाव परिवर्तित हो गया और धार्मिक संस्थाओं के साथ–साथ क्षेत्रीय राज्यों जिनको मुगल साम्राज्य का सामना करना पड़ा को भी चित्रकला का केन्द्र बनाया गया। 16वीं शताब्दी और 19वीं शताब्दी के मध्य, क्षेत्रीय राज्यों में चित्रकला दो प्रमुख भौगोलिक क्षेत्रों में पनपी, जिनमें आज का राजस्थान, मध्य प्रदेश और पंजाब के पर्वतीय क्षेत्र, जिनको अक्सर 'राजपूत' चित्रकला से संदर्भित किया जाता था। इसी समयावधि में 'दक्षिण' में मुस्लिम सुल्तानों के अन्तर्गत चित्रकला पनपती रही।

15.2 किशनगढ़ चित्रकला–राजपूताना

चित्रकला पर आरम्भिक राष्ट्रवादी अध्ययनों में राजपूती चित्रकला को मुगल या इस्लामिक परम्परा से भिन्न माना गया। राजपूत चित्रकला की ओर ध्यान आकृष्ट करने वाले पहले कला इतिहासकार आनन्द कुमारस्वामी थे, उन्होंने कहा है कि मुगल चित्रकला धर्म निरपेक्ष, व्यक्तित्व की विशेषता, प्रकृतिवाद में रूचि लेने वाली और समकालीन ऐतिहासिक घटनाओं को प्रदर्शित करने वाली थी। दूसरी ओर, राजपूत चित्रकला मुख्य रूप से रहस्यमयी, गहन प्रतीकात्मक और पारलौकिक होती थी[2]। कुछ समय पूर्व तक, यह भारतीय चित्रकला की बहसों में बनी रही[3]। कला–इतिहासकारों ने अपने हाल में लेखों में इस द्वैध पर प्रश्न उठाये हैं। मतभेदों की ओर स्पष्ट रूप से इशारा करने के बजाय, शोध का केन्द्र मुगल और राजपूतों के करीबी सम्बन्धों पर रहा है, जो दो संस्कारों के अर्थपूर्ण मिलन और आदान–प्रदान को प्रोत्साहित करता था[4]।

अकबर की राजनीतिक व्यवहारिक नीतियों के द्वारा राजपूतों को मुगल राजनीति, प्रशासन और परिवार में समाहित किया गया। 16वीं शताब्दी के मध्य से, साम्राज्य के विस्तार और अकबर द्वारा अपनी स्थिति को शहंशाह तक मजबूत करने में राजपूत राजाओं (केवल मेवाड़ के राज को छोड़कर) ने मुगल आधिपत्य को स्वीकार कर लिया। राजपूत राजा और युवराज शाही सेवा में ओहदेदार के रूप में स्वीकार किये गये और उनको उच्च मसनब प्रदान की गई। उनकों इस बात की इजाजत दी गई कि वे अपनी पैतृक भूमि पर अपना नियंत्रण रख सकें जो उनको मुगल भूमि की कार्य व्यवस्था में वतन जागीर के हिस्से के रूप स्वीकृत की जाती थी। राजपूत राजाओं को शाही सेवा के लिये सैनिक भेजने होते थे और मुगल दरबार में हाजिरी लगानी होती थी।

[2] Ananda Coomaraswamy, *Rajput Painting: Being an Account of the Hindu Paintings of Rajasthan and the Panjab Himalayas from the Sixteenth to the Nineteenth Century, Described in Their Relation to Contemporary Thought with Texts and Translations* (London, New York: H. Milford, Oxford University Press,1916), 20.

[3] For example, consider the following statement in the volume on Mughal and Rajput Painting in *The New Cambridge History of India,* a standard reference book for historians. "Rajput and Mughal, then, can be equated with Hindu and Muslim, or even with indigenous and foreign: and the study of these paintings allows us to see how two quite different cultural systems react to the same visual stimulus – to India — as well as to each other." Milo Cleveland Beach, *Mughal and Rajput Painting*, *The New Cambridge History of India* (Cambridge: Camridge University Press, 1992, Reprint 2002), 2.

[4] Kavita Singh, "A Knowing Look: Appropriation and Subversion of the Mughal Idiom in Rajput Paintings of the Eighteenth Century" in Mahesh Sharma, Padma Kaimal (ed.) *Indian Paintings: Themes, Histories, Interpretations Essays in Honour of B. N. Goswamy* (Mapin Publishing Pvt. Ltd, 2013): 168-169; Molly Aitken, "Introduction", *A Magic World: New Visions of Indian Painting*(Mumbai: Marg Foundation, 2016), 10-19.

1561 में कछवाहा भारमल ने अपनी बेटी का हाथ विवाह हेतु अकबर को दिया। इस प्रकार यह वैवाहिक सम्बन्धों की एक शुरूआत थी, जिसके बाद यह सिलसिला बन गया। बड़ी संख्या में राजपूत राजकुमारियाँ मुगल परिवारों के ब्याही गई और राजपूत रानियाँ मुगल राजाओं व राजकुमारों की माँ बनी। परिणाम स्वरूप, राजपूत मुगलों के नजदीकी सहयोगी हो गये[5]। अधिकांश समय मुगलों के बीच में बिताने के कारण उन्होंने मुगल दरबार के तौर तरीके और उनके संस्कारों को अपनाना शुरू कर दिया और चित्रकला में संरक्षण देना शुरू कर दिया। कविता सिंह कहती हैं ''चित्रकला को एक दरबारी कला का स्वरूप—उच्च गुणों से युक्त चित्र बनाया जाना, बारीकी से बनायी गयी कला की वस्तुएँ, जो धर्म निरपेक्ष और विशिष्टता के उद्देय से बनाई गई—लगता है मुगलों द्वारा ही भारत में लाई गई''[6]

राजपूतों को मुगल चित्रांकन भा गया। मुगल काल से भी पहले भारतीय चित्रकला में चित्रांकन का अभ्यास होता रहा था, लेकिन वह मुगल— चित्रांकन से भिन्न था, जहाँ पर वैयक्तीकरण को पसन्द किया जाता था, और वे पहचान के लिये अभिलेख उत्कीर्णन पर विश्वास करते थे।[7] आरंभ में राजपूत शासकों और राजकुमारों के चित्र मुगल बादशाहों के लिये तैयार किये जाते थे। अकबर के लिये उसके काल में बहुत बड़ा एलबम उसके सभ्रान्त कुलीनों के चित्रों का बनाया गया था। ये चित्र उन रुचि और शैलियों को परिभाषित करते थे, जो राजस्थान के चित्रकारों द्वारा अंगीकृत किये गये। उदास हरे रंग की तटस्थ पृष्ठभूमि में चित्रित पार्श्वचित्र में मुख दिखाया जाता और शरीर का तीन चौथाई भाग दर्शक की ओर कर दिया जाता (चित्र. 1 आमेर के मान सिंह)

चित्र-1: आमेर के राजा मान सिंह का पोर्ट्रेट, ca. 1590, Metropolitan Museum of Art, Purchase, Gift of Jacques L. Galef and Bequest of Charles R. Gerth, by exchange, 1982.174

राजपूत शासक भी मुगल चित्रकारों को अपने चित्र बनाये जाने के लिये कार्य पर लगाते, जिनकों घर पर वंशजों के चित्रों के साथ एकत्र किया जाता था। मुगल शैली के कुछ सुन्दरतम चित्र आमेर और जोधपुर के राजाओं के लिये बनाये गये। आमेर के मिर्जा राजा जय सिंह प्रथम (1621—27) और जोधपुर के महाराजा गज सिंह (1619—38) (चित्र 2) का उत्कृष्ट दोहरा चित्र, संभवतः मुगल चित्रकार ने आमेर के शासक के लिये बनाया। चित्रों में देवनागरी में लिखा उत्कीर्णन इसकी पहचान करता है।

[5] Rajput rulers were conscious of their dual roles as Mughal nobles and rulers of their own kingdoms. They recognized that both roles were crucial to their identity. Catherine Asher points to an inscription on the Rohtas Palace in Bihar which was patronized by Man Singh of Amber (r. 1589-1614). In the Persian inscription Man Singh is acknowledged as the Mughal servant, but the Sanskrit portion stresses on Man Singh's position as the Kachhawaha ruler of Amber. The latter inscription makes no reference to the Mughal emperor. See Catherine B. Asher, "Excavating Communalism: Kachhwaha *Rajdharma* and Mughal Sovereignty" in Rajat Datta (ed.) *Rethinking a Millenium: Perspectives on Indian History from the 8th to the 18th century, Essays ForHarbans Mukhiya* (Aakar Books, 2008), 225.

[6] Singh, "A Knowing Look", 169.

[7] Aitken, *The Intelligence of Tradition*, 113.

चित्र-2: आमेर के महाराजा जय सिंह और मारवाड़ के महाराजा गज सिंह, एम्बर एल्बम से फोलियो, बिचित्र को जिम्मेदार ठहराया (भारत, सक्रिय सी। 1610–सी। 1660), ca. 1630, © LACMA, From the Nasli and Alice Heeramaneck Collection, Museum Associates Purchase, M.80.6.6

स्वर्ण से बने सुसंपन्न तख्त–राजगद्दी पर बैठे हुए जय सिंह–प्रथम, गज सिंह को उनकी आवाभगत के प्रतीक स्वरूप सम्मान से पान प्रस्तुत करते हैं। उनके सिरों के ऊपर की ओर यूरोपीय देवदूतों का जोड़ा स्वर्ण निर्मित चंदवा लिये हुए है, जिस पर सफाविद आकृतियाँ बैठी हुई दिखाई देती हैं। राजगद्दी के नीचे के फर्श पर एक नीला अरबी कालीन बिछा हुआ है। उनके पद और सम्पत्ति की स्थिति के अनुरूप, दोनों व्यक्ति खूबसूरत स्वर्ण पारदर्शी वस्त्र पहने हैं, और शानदार रत्नों से सजे हैं। स्वर्ण के प्रयोग की अधिकता और बेहतरीन कारीगरी यह बताती है कि राजपूत राजाओं द्वारा, जैसे मिर्जा राजा जय सिंह प्रथम ने, इन चित्रकलाओं को प्रचुर संरक्षण प्रदान किया गया।[8]

यह दोहरा चित्र, जिसकी ऊपर व्याख्या की गई है, क्षेत्रीय शासकों को उच्च–मुगल–शैली की चित्रकला का अनोखा उदाहरण है। अधिकांश मामलों में राजपूत दरबारों में चित्रकार विभिन्न स्तरों पर मुगल आदर्शों को समाहित कर लेते थे। मारवाड़ के राजा महाराजा जसवंत सिंह (1638–78) के चित्र की शारीरिक संरचना मुगल संरचना का उदाहरण लगती थी।[9] चित्रकारों का तकनीकी कौशल चेहरे को आकार देने और छाया दिखाने के लिये नक्कासी के कार्य में देखा जा सकता है। कान के भीतर की लाइनों को रूप दिया जाना, मूछों के घुमाव और कमल के फूल के पत्रों के आकार की आखों का निर्धारण कल्पना, शैली के विविध प्रकारों की खूबसूरती दिखाता है।

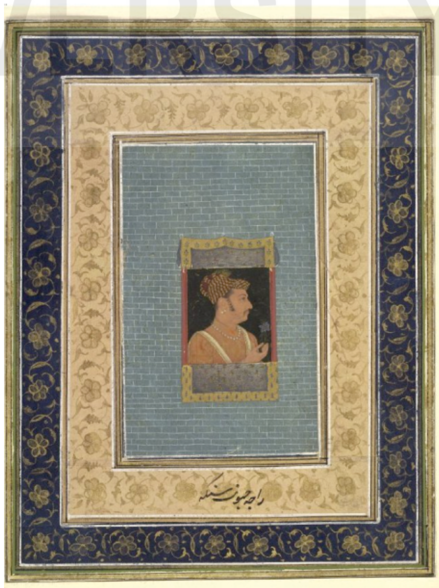

चित्र-3: मारवाड़ के महाराजा जसवंत सिंह, ca. 1655, © The Trustees of the British Museum 1920,0917,0.77

[8] Catherine Glynn & Ellen Smart, "A Mughal icon re-examined", *ArtibusAsiae*, Vol 57, No. 1/2 (1997), pp. 5-15.

[9] For a portrait of Maharaja Jaswant Singh made by the Mughal artist.

कौशल की कमी की जगह, कला इतिहासकारों ने यह समझ बनाई कि राजपूताना दरबारों में चित्रकारी में मुगल शैली का सम्पूर्णता से नहीं बल्कि चुन चुन कर प्रयोग किया गया। राजाओं के चित्र यह स्पष्ट करने के लिये बने कि व्यक्ति की बाहरी बनावट की अपेक्षा उसके व्यक्तित्व की खूबसूरती को सराहा जाय, समझा जाय।[10] शासक के नखशिख का प्रदर्शन देवताओं के स्वरूप की तरह किया गया। राजपूत चित्रकारों ने 'लक्षणों' पर जोर दिया या चक्रवर्ती राजाओं के संज्ञानात्मक गुणों को, जिनका उल्लेख नगनाजीत की पुस्तक 'चित्रलक्षण' में देवी–देवताओं के वर्णन में दिखाया गया है, परिलक्षित किया गया। उदाहरण के लिये,चक्रवर्ती राजा की आंखें बांस से बने धनुष की तरह दिखाई गई। इस तरह की काव्यात्मक अतिरेक की स्थिति 17वी और 18वी सदी में काफी लोकप्रिय थीं।[11] इस प्रकार के गुणात्मक विशिष्टता किये चित्र राजपूत राजाओं के पद और सम्मान को अभिव्यक्त करने के लिये चित्रकारों ने तैयार किये।

राजाओं/शासकों के एकल चित्र के साथ–साथ, राजपूत चित्रकारों ने ऐसे स्थिति विशेष से संबंधित चित्र भी बनाये, जिसमें राजाओं को दरबार में सभ्रांतों के साथ, त्यौहार मनाते हुए, संगीत सुनते हुए, नृत्य कला का आनंद लेते हुए या महिलाओं के साथ समय बिताते हुए दिखाया गया। इस प्रकार के चित्रों को, जिसमें दरबार में आनंद उठाते हुए राजाओं का चित्रण था, उनको 18वीं शताब्दी में यह स्पष्ट करने के लिये प्रयोग किया गया कि किस प्रकार राजपूत राजशाही का पतन हो रहा था। प्राच्यविदों के इस दृष्टिकोण के चुनौती देते हुए दीप्ति खेड़ा मेवाड़ के राजाओं के संरक्षण में तैयार इन चित्रों के संदर्भ में कहती हैं कि इन चित्रों को बौद्धिक और शुद्ध सौंदर्य के वातावरण में देखा जाना चाहिये। वह अपना पक्ष अकाट्य तर्क के साथ रखती हैं कि इन चित्रों को उन ऐतिहासिक दस्तावेजों/अभिलेखों के साथ रखकर विचार में लाना चाहिये जहाँ राजदरबारों का वर्णन किया गया है। खेड़ा स्पष्ट कहती हैं कि राजाओं के शिष्टाचार की नियमावली स्पष्ट करती है कि राजा कलाओं के रसिक होते हैं। राजाओं में आदर्श व्यवहार माना जाता है कि वे भौतिक सुखों में रुचि ले मद्यपान, खुशुबुओं, फूल–मालाओं (गजरे) और आभूषणों का उपयोग करें। महाराणा जगत सिंह द्वितीय (1734–51), उदयपुर के शासक, दरबार के संभ्रातों के साथ जल–विहार करते थे।

[10] B.N. Goswamy, "Essence and appearance: some note on Indian Portraiture" in Robert Skelton (ed.) *Facets of Indian Art* (Victoria and Albert Museum, London, 1986), 193.
Desai elaborates how Mughal darbar scenes were adapted at Rajput courts. While both were formal compositions, they expressed court hierarchy in different manners. In the Mughal *darbar* hierarchy was established by the degree of distance of an individual from the Emperor, with the imperial princes standing closest to him. Only the Emperor had the prerogative to be seated, and the highest nobles were allowed to lean on a stick. In the Mewar court, the closest members of the family were placed at the cardinal points of a square. The king was shown seated among equals, while being distinguished as the head through symbols like the shield, flywhisk and *huqqa*. The only figures that standing were the attendants, servants and musicians. This reflects the larger political context of Rajput kingship where the ruler acknowledges the support and power of his clansmen.See Vishakha N. Desai, "Timeless Symbols: Royal Portraits from Rajasthan 17th to 19thcentury", in Karine Schomer (ed.), *The Idea of Rajasthan: Explorations in Regional Identity, Vol.1* (Manohar and AIIS, 1994): 316-342.

[11] Aitken, *The Intelligence of Tradition*, 25-26.

चित्र-4: जय राम द्वारा महाराणा जगत सिंह - II महल के जलाशय में खिलखिलाते हुए, ca. 1746-50, ©The San Diego Museum of Art, Edwin Binnery 3rd Collection, 1990.624.

जब सब आपस में जल क्रीड़ा करते, तो उनकी मानसिक स्थिति शान्त और निश्चिंत हो जाती। कुछ हाथों को दोनों ओर फैलाकर तैरते, कुछ जल में नीचे की ओर चले जाते। जबकि कुछ संभ्रान्त जन तालाब के किनारे फुरसत में बैठकर समय बिताते और अपने पैरों को जल में डुबाकर ठंडे पानी का आनन्द लेते। पूरा वातावरण बड़ी तादाद में चाकरों द्वारा खुशबूदार मसालों के साथ बने व्यंजनों के कारण और मादक बन जाता। अनौपचारिक चित्रों में, जैसे कि जग–विलास महल में जगत सिंह जी की है, जिसमें राजा और उनके दरबारी सभ्रान्त लोगों के बीच सामूहिक स्तर पर जुड़ाव को प्रदर्शित किया गया है। दरबारी नन्दराम की एक समकालीन कविता 'जग विलास' 1746 में बने नये जल–महल 'जगनिवास' के उद्घाटन के अवसर का वर्णन करती है।[12] कवि ऐसे जल–विहार की एक उत्तेजनात्मक दृष्टि से बने माहौल का विवरण उपलब्ध कराता है।

"मछली, बकरे, हिरन से बने अभिभूत करने वाले व्यंजन और चावल व मसूर से बनी खिचड़ी तथा मिसरी पड़ी हुई छाछ की महक से शारीरिक इंद्रियों को जो संतोष मिलता है और गुलाब जो सारे परिसरों में फैले रहते हैं।"[13]

एक अन्य कविता में नन्दराम कहते हैं– दिलखुश महल और खुश महल जैसे बगीचों–परिसरों में जो बहुतायत में हैं, शासक आनन्द से राज करते है (सुख सो राजतराना) यह वह जगह होती है जहाँ वह स्वयं और उसके सहयोगी आनन्द के सागर में डूबे रहते हैं ('सभी संग सुख में तह–सुखों सागरा पाया)।[14] ऐसे विवरण दरबारी चित्रकला में एक भिन्न प्रकार के अध्ययन का अवसर प्रदान करते हैं। ऐसे जमावड़ों में राजा और उसके दरबारी जनों के बीच मजबूत भावनात्मक संबंध बनते हैं, जिनको चित्रकला के आधार पर स्थायी बना दिया जाता है।[15]

---

[12] Dipti Khera, "Jagvilasa: Picturing Worlds of Pleasure and Power in 18th-Century Udaipur Painting", in Aitken (ed.) *A Magic World,*74.

[13] Ibid., 82.

[14] Ibid.

[15] Ibid., 83.

राजपूतों द्वारा मुगल–शैली का आकृति चित्रांकन और दरबारी दृश्यों के चित्रांकन के लिये उपयोग किया गया, किन्तु महाकाव्यों, रूमानी और धार्मिक चित्रांकन में मुगल–शैली के वास्तविक जहान को चित्रित करने की परंपरा में रूचि नहीं दिखायी। एक चित्रशाला में, जैसीकि जोधपुर या आमेर में हैं, शैलीगत विरोध भी देखा गया है।[16] उदाहरण के लिये, विद्वान बताते है कि जोधपुर में 1650–60 के दशक में, लगभग उसी समय, जब मारवाड़ के महाराजा जसवंत सिंह का चित्र बनाया गया था, रागमाला चित्रों की बड़ी श्रृंखला शुद्ध राजपूत शैली में बनाये गये थे। एक जनप्रिय श्रेणी की चित्रकला, रागमाला शाब्दिक रूप से 'रागों की माला', संगीत की विधियों को चित्रित करते हुए दिखाये जाने की है, जिससे प्रत्येक राग को एक नायक या नायिका की तरह आकार दिया गया और एक कथा की तरह दिखाया गया।

चित्र-5ः सोरथि रागिनी, रागमाला श्रृंखला से फोलियो, ca. 1650, © The Trustees of the British Museum, 1955,1008,0.37.

[16] Aitken, *The Intelligence of Tradition*, 24-25.

सांसारिक रंगों में रंगी हुई 'सोराथिरंगिनी' की संगीत की बुनावट प्रेमियों को गहरी रात में देखने की कल्पना करती है। संगमरमर से बने मंडप की लाल रंग की पृष्ठभूमि उनके जुनून का प्रतीक है। आकृति को गढ़ने और वर्गीकृत करने के लिये रंगों और वास्तुकला का उपयोग किया गया। मुख्य मंडप से दूर एक महिला सारंगी वादक साज बजाती है। कोई योजना विशेष दिखाई नहीं देती, रंगों का प्रयोग भी सतही तौर पर होता है।[17]

मौली एटकन बीकानेर की चित्रशाला का उदाहरण रखते हैं, जिसके चित्र यह स्पष्ट दिखाते हैं कि जब चित्रकार मुगल शैली व परम्पराओं को भलीभाँति समझते थे, उन्होंने महाकाव्यों और वर्णनात्मक विषयों को शैलीगत विभिन्नता के साथ चुना और पसंद किया। यह इसलिये था कि काव्यात्मक कल्पना सांसारिक वास्तविकताओं से भिन्न होती है और एक सहजीकरण की योजना की आवश्यकता होती है। अभिलेखों से प्रमाणित होता है, कि दिल्ली के एक चित्रकार अली रजा को बीकानेर के राजा करण सिंह (1631–1669) ने वर्ष 1694 में लक्ष्मी–नारायण की पूर्ति बनाने के लिये बुलवाया था।[18] राजपूतों की पसंदगी के आधारों पर, अली रजा ने क्षैतिजीय प्रारूप का चुनाव किया। वास्तुकलात्मक स्तंभों और विपरीत रंगों का प्रयोग कर देवी–देवताओं के आकार केन्द्र में बनाये जाते थे। उसकी कला की और विशेषतायें जिनमें महिलाओं के शारीरिक स्वरूप को नाजुक दिखाते हुए, उनके वस्त्र को सावधानीपूर्वक सजाकर रखने की कला, उनकी मुगल शैली को प्रदर्शित करती है।[19]

सत्रहवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में केदार रागिनी के चित्र में, बीकानेरी कलाकार, रूकुनूद्दीन ने दो साधुओं को एक पेड़ के नीचे दिखाया–एक ध्यान में मग्न और दूसरा रूद्रवीणा बजाते हुए। रूकनूद्दीन ने मुगल तकनीक का उपयोग किया है। वह जंगल की हरी पत्तियों के समक्ष पेड़ को गहराई देते हुए पत्तियों को हल्के हरे–रंग में रखते हैं और इसे पृष्ठभूमि के रूप में उपयोग करते हैं। आकृतियाँ बड़ी सावधनी से उकेरी गई हैं, और नाजुक कूंची के काम से चित्र को शान्तिपूर्ण सुन्दरता प्रदान की गई है। इसी के साथ, रूकनूद्दीन ने राजस्थानी व्यवहार (शैली) को भी चित्रकारी में लिया है। पेड़ की प्रत्येक पत्ती को सावधानीपूर्वक चित्रित किया गया है, और उनको सुन्दरता से गुच्छों में दिखाया गया है। साधु पशु–चर्म में बैठते हैं तो ऐसे लगता है कि हवा में तैर रहे हों। वृक्ष का सबसे उपरी भाग रात्रि के आकाश तक जाता है जो सूक्ष्म रूप से चमकते तारों के साथ है।[20]

चित्र-6ः केदार रागिनीः एक रागमाला श्रृंखला से फोलियो, रुक्नुद्दीन द्वारा, ca. 1690-95, Metropolitan Museum of Art, Gift of Mr. and Mrs. Peter Findlay, 1978.540.2.

[17]For more examples of this stylistic contrast at Jodhpur see Rosemary Crill, *Marwar Painting: A History of the Jodhpur Style* (Mumbai: India Book House, 2000). For a similar trajectory at Amber see Asok Kumar Das, "Court Painting for the Amber Ruler, circa 1590-1727" in Andrew Topsfield (ed.) *Court Painting in Rajasthan* (Mumbai: Marg Publications, 2000), 41-56.

[18] For an illustration of this painting see Aitken, *Intelligence of Tradition*, Fig 1.6, p. 27.

[19] Ibid., 27-28.

[20]Aitken,*The Intelligence of Tradition,* p. 33-35.

राजपूत संरक्षण में बनी चित्रकला की शुरुआती श्रृंखला में लिखा गया है कि राजपूत मुखिया मुगल चित्रकला की शैली में पारंगत चित्रकारों को कार्य में लगाते थे, जो राजस्थान में दरबार की चित्रशाला की स्थापना करने में मुख्य संवाहक थे। 1591 में, बूंदी के राव भोज सिंह हाडा ने वाराणसी के बाहरी क्षेत्र, चुनार मे एक रागमाला की स्वीकृति दी।

चित्र-7: भैरव राग, 1591. Collection Victoria & Albert Museum, IS.40-1981 Source: Wikimedia Commons

1575 में भोज सिहं जी के पिताजी राव सुरजन सिंह हाडा को (1554–85) उस क्षेत्र का राज्यपाल नियुक्त किया गया था। रागमाला के एक चित्र में कहा गया है कि श्रृंखला का चित्रांकन शेख हुसैन, शेख अली, और शेख हातिम ने तैयार किया। ये सब फारसी गुरु मीर सैय्यद अली, और ख्वाजा अब्द अल–समद के शिष्य थे। जो हुमांयू के दरबार सफाविद से लाये गये थे और अकबर के मातहत मुगल चित्रशाला के प्रमुख पदों पर थे।[21] चित्रकारों का मुगल शैली मे अभ्यास ''फैले हुए फलक पर वास्तुशिल्प में, सूक्ष्मतम ध्यान से बनाये गये सजावटी आकार या आकृतियाँ और इस प्रकार बनाई गई मानव आकृतियाँ कि उनमें वजन

[21] The inscription reads, "He is God – exalted be He. The book *Ragmala* has been prepared on Wednesday at noon in the locality of Chunar. The work of the pupils of Mir Sayyid Ali NadirulmulkHumayunshahi and Khwaja 'Abd al-Samad Shirin-Qalam the slaves Shaykh Husayn and Shaykh Ali and Shaykh Hatim son of Shaykh PhulChuisti. Written on the 29th of Rabi' II of the year 999 [Feb.24, 1591]. Written by the humble Daud son of Sayyid [illegible]." Wheeler M. Thackston in Milo C. Beach, "The Masters of the Chunar*Ragamala* and the Hada Master", *Master of Indian Painting* Vol. I (ArtibusAsiae Publishers, 2011), 292.

और शारीरिक स्थूलता दिखाई दे'' मे दिखा।[22] इस्लामिक पुस्तकों की तरह इनको ऊर्ध्वगामी बनाया गया और चौड़ाई देने के लिये, गहराई के लिये विकर्ण रेखाओं में दिखाया गया। भू–तल के विभिन्न आकार, दीवारों के स्वरूप, ब्लाक छपाई वाले परिधान लटकते हुए दिखाई देते हैं। चुनार रागमाला सभी रागमाला चित्रों के लिये पथ–प्रदर्शक सिद्धान्त बनी रही। अगली तीन शताब्दियों तक बूदीं में निर्मित चित्रों की मार्गदर्शक रही।

बूंदी में भोज सिंह के महल की दीवारों पर टंगी चित्रों की बनावट बताती है कि एक से अधिक ऐसे चित्रकार हाड़ाओं के साथ चुनार से बूंदी आये।[23] चुनार रागमाला के गुरुओं के साये में, स्थानीय कलाकार काम पर लिये गये, और बूंदी में एक चित्रशाला की स्थापना हुई। एक बूंदी कलाकार, जिसको कला–इतिहासकारों के द्वारा हाड मास्टर कहा गया, शिकार सम्बन्धी और हाथियों से युद्ध के चित्र बनाने में विशेषज्ञता प्राप्त कर सके। (चित्र-8).

चित्र-8: हाथी का मुकाबला, बूंदी के हाडा मास्टर, ca. 1610-20, © Philadelphia Museum of Art, 125th Anniversary Acquisition. Alvin O. Bellak Collection, 2004-149-61.

हाथी के शरीर की शारीरिक विशेषताओं पर मेहनत करने के बजाय वे उसके वजन और चमड़ी को छोड़कर उसकी फुर्ती और ऊर्जा को सामने लाना उपयुक्त समझते थे। हाथियों के चारों ओर सजीव लगने वाली आकृतियाँ चित्र की नाटकीय छवि को बढ़ाते थे। 1631 में, जब बूंदी का एक भाग कोटा राज्य के रूप में स्वतंत्र स्थापित किया गया, कहा जाता है कि हाड़ा मास्टर (गुरु) भी नये राज्य में चले आये। एक प्रतिद्वन्द्वी कार्यशाला यहाँ स्थापित की गई, जो उन्नीसवीं शताब्दी तक निरन्तर फलती फूलती रही। हाड़ा गुरु के कार्य के अन्तिम वर्षों में मानव आकृति की रचना बहुत ही जटिल और सटीक हो गई थी।[24]

चित्र-9: दो हाथी की लड़ाई, कोटा के हाड़ा मास्टर, ca. 1655, Collection of Howard Hodgkin. Source: Wikimedia Commons

[22] Ibid., 294.
[23] Ibid., 296.
[24] Ibid., 300-303.

कोटा चित्रशाला में शिकार करते हुए दृश्य सर्वप्रथम 1690 में बनाये गये जो अपने परिदृश्य के अभिनव स्वरूप के लिये सराहे जाते थे। (चित्र-10 'माधो सिंह जंगली सुअर का शिकार करते हुए)। पूर्ण हरियाली के चित्र कई तकनीकों के प्रयोग से बनते थे। भारतीय चित्रकला में असामान्य था कि पृष्ठभूमि में मैदान भी दिखाई दे। चित्र रौशनी का प्रयोग भी करता था, घने जंगल के दृश्य के लिये घने पारदर्शी पत्तों का प्रयोग किया जाता था।[25] शिकार करने की मानव–मन की उत्सुकता को प्रदर्शित करने के लिये चित्र में कोटा के शासक माधो सिंह जी को आगे की ओर झपटते हुए दिखाया गया है। माधो सिंह के परिचारक वर्ग के दो व्यक्तियों को पेड़ के तने के पीछे छिपते हुए दिखाया गया है।[26]

चित्र-10: माधो सिंह जंगली सूअर का शिकार करते हुये, ca. 1720, Collection of Howard Hodgkin. Source: http://jameelcentre.ashmolean.org/object/L1118.79

कोटा में चित्रकला का अगला चरण, राजनीति, धर्म और उनका चित्रकला से संबंध का रहा। शासकों की मनोविनोद के चित्र या दरबार लगाते हुए राजकीय कार्य करते चित्र राजा की राजनैतिक शक्ति की मजबूती दिखाते हैं। इसी प्रकार, हिन्दू देवी देवताओं के धार्मिक चित्र की भी उपस्थिति और महाभारत, रामायण, भागवत पुराण और गीत–गाविन्द से संबंधित चित्रित हस्तलेखों का शाही संग्रहालय में रखा जाना, राजाओं की उच्च आध्यात्मिकता का प्रतीक बन जाता है। ये दिखाते हैं कि राजा धार्मिक विश्वास में भक्ति और उसकी रक्षा करने वाले संरक्षक थे।[27] समय–समय पर, राजपूत संरक्षकों ने धार्मिक चित्रों में पवित्रता के साथ सम्बद्ध और राजा के शासन की सर्वोच्चता दिखायी।

---

[25] Milo C. Beach, "Masters of Early Kota Painting" in Beach, Fisher & Goswamy eds. *Masters of Indian Painting*, Vol. II, 466-469.

[26] To understand how similar hunt scenes continued to be painted for Kota rulers till the end of the eighteenth century see "The Lion Hunt of MaharaoUmed Singh of Kota" by ChateriGumani, dated 1779, Williams College Museum of Art, purchase, Vaccariello Fund and Karl E. Weston Memorial Fund 83.6, http://egallery.williams.edu/objects/8386/the-lion-hunt-of-maharao-umed-singh-of-kota (Retrieved on 2 January, 2019).

[27] Joan Cummins, *Indian Painting:From Cave Temples to the Colonial Period* (Boston: Museum of Fine Arts Publications, 2006) 162.

औरंगजेब की मृत्यु के बाद के वर्षों में कोटा की मुगल राजसत्ता से सम्बन्ध और इसके पैतृक राज्य बूंदी की स्थिति उतार–चढ़ाव भरी रही। पड़ौसी राजघरानों ने मुगल तख्त के साथ प्रतिद्वन्द्वी दावेदारों का सहयोग किया। जहाँ बूंदी ने भावी मुगल शासक बहादुर शाह का सहयोग किया, वहीं कोटा के राव राजाओं ने युवराज आजम शाह का। जब बहादुर शाह मुगल राजगद्दी पर बैठे, तो उन्होंने बूंदी को उपहार में कोटा की सभी जमीने दे दीं और कोटा को दंड दिया। 1713 में जब अगला बादशाह मुगल तख्त पर बैठा (फारुख सियर 1713–19) तो उसने बूंदी को कोटा के राजा भीम सिंह को दे दिया (1701–1720) इसके साथ ही उनको महाराव की पदवी भी दी। यद्यपि दो साल बाद फारुख सियर ने बूंदी को अपने पास रख किया। 1720 में कोटा ने बंदी को अपने मिला लिया, और 5 सालों तक इसको अपने नियंत्रण में रखा।[28]

मुगल शासकों की बनती बिगड़ती स्थिति एक प्रकार से मुगल शासन की कमजोर होती पकड़ का संकेत दे रही थी। उस क्षेत्र के अन्य राजघरानों की तरह कोटा ने शाही केन्द्र को सम्मान दिया और उसके साथ बने रहे, परंतु स्वयं को कृष्ण–भक्ति के वल्लभ सम्प्रदाय के साथ जोड़ लिया, जो राजस्थान में अठारहवीं शताब्दी में सबसे प्रभावशाली सम्प्रदाय था।[29] 1719 में, वल्लभ सम्प्रदाय के नौ स्वरूपों में से एक, जिसे ब्रजनाथ जी कहा जाता था, को कोटा का मुख्य संरक्षक देवता मान लिया गया। वल्लभ संप्रदाय के संस्थापक, वल्लभाचार्य की आरंभिक सीखों में ''शुद्धअद्वैत'' प्रथक था, जिसके अनुसार ईश्वर के अस्तित्व से बाहर कुछ नहीं है। इस संबंध में इसे कृष्णा समझा जाये। इसका अर्थ यह हुआ कि यह भौतिकवादी संसार का स्वरूप भी ईश्वर का ही भाग है, और यह उनके लिये संभव है कि वे दोनों सह–अस्तित्व बनाये रहें। इस दर्शन के कारण मनुष्यों की दुनिया में देवताओं को स्थान मिला या देवताओं के मध्य मनुष्य को, जिसका संदर्भ चित्रों में अक्सर होता रहा। सन् 1720 से, कोटा के चित्रकारों ने ब्रजनाथ जी को दरबारी परिवेश में, राजाओं के साथ मिलाना और दिखाना शुरू कर दिया।[30]

चित्र 11 में राव अर्जुन सिंह (1720–23) ब्रजनाथ जी को गुलाब वाटिका में पूजते रहे। चित्र निर्माण के केन्द्र में, एक जगह जो कि राजा के लिए सुरक्षित होती थी, सामान्यता, वह ब्रजनाथ जी के लिये थी। गुलाब के फूलों से सजी छतरी में ब्रजनाथ जी अर्जुन सिंह को एक फूलों की माला देते हैं। शक्ति के गलियारों में, ब्रजनाथ जी को अर्जुन सिंह से उच्च पद प्राप्त था।

चित्र-11: राव अर्जुन सिंह गुलाब वटिका, कोटा में श्री बृजनाथजी की पूजा करते हुए, ca. 1720-25, British Library, Add.Or.5722. Image in Public Domain. Source: https//blogs.bl.uk/asian-and-african/2013/06recent-acuuisition-rao-arjun-singh-of-kotah.html.

[28] Beach, "Masters of Early Kota Painting", 470.

[29] Paintings had a significant place in the Vallabh Samparadaya. The sect's founder, Vallabhacharya had declared that just as idols were icons of worship, paintings could also serve as a medium of divinity. According to Woodman Taylor, this adds a functional dimension to paintings beyond their aesthetic merit. Taylor points out that in Kota along with paintings of deities, genealogical portraits of the dyansty's ruler are also worshipped during Dushhera and other religious festivals. Woodman Taylor, "Picture Practice: Painting Programs, Manuscript Production and Liturgical Performances at the Kotah Royal Palace", in Welch (ed.) *Gods, Kings and Tigers*, pp. 61-72.

[30] See *Sri Brijnathji hunting at Makundgarh,* attributed to the Kota Master, c. 1715, Collection of Gursharan S. and Elvira Sidhu. https://www.metmuseum.org/art/collection/search/76219 (Retrieved 5 January, 2019).

फिर भी चित्रकार अपने संरक्षक का सम्मान करता है, उनके दो चित्र बनाकर – एक में वह ब्रजनाथ जी के पैरों पर श्रद्धा से नमन करते हुए, दूसरे में मोरपंख से बने पंखे से सेवा में लगे एक सेवक की तरह (मोरछाल)। चित्रकार ब्रजनाथ जी और अर्जुन सिंह के बीच के अन्तर को भी समाप्त कर देता है, जो लौकिक और ईश्वरीय शक्ति के बीच होता है, जिसमें उनके शारीरिक बनावट का स्वरूप एक सा ही दिखाया गया। दोनों को चौड़े माथे वाला, धनुषकार भौंह, और लम्बी, तीव्र और नुकीली नाक वाला दिखाया गया है।[31] इसी प्रकार तीनों की आकृतियों के मुख मण्डल के चारों ओर मोती के रंग की सफेद प्रमामण्डल की ज्योति चित्रित रहती थी।[32]

ब्रिजनाथ जी और राव अर्जुन सिंह का सम्मिश्रण चित्रकला में सर्वत्र दिखाई देता है। चित्र 11 को चित्र 12 से तुलना करें, जिसमें राव अर्जुन सिंह को एक अश्व की जाँच करते दिखाया गया है। चित्रकार कोटा के राजा की लौकिक तस्वीर और संरक्षक देवता को चित्रित करने की बनावट एक समान रखते थे।

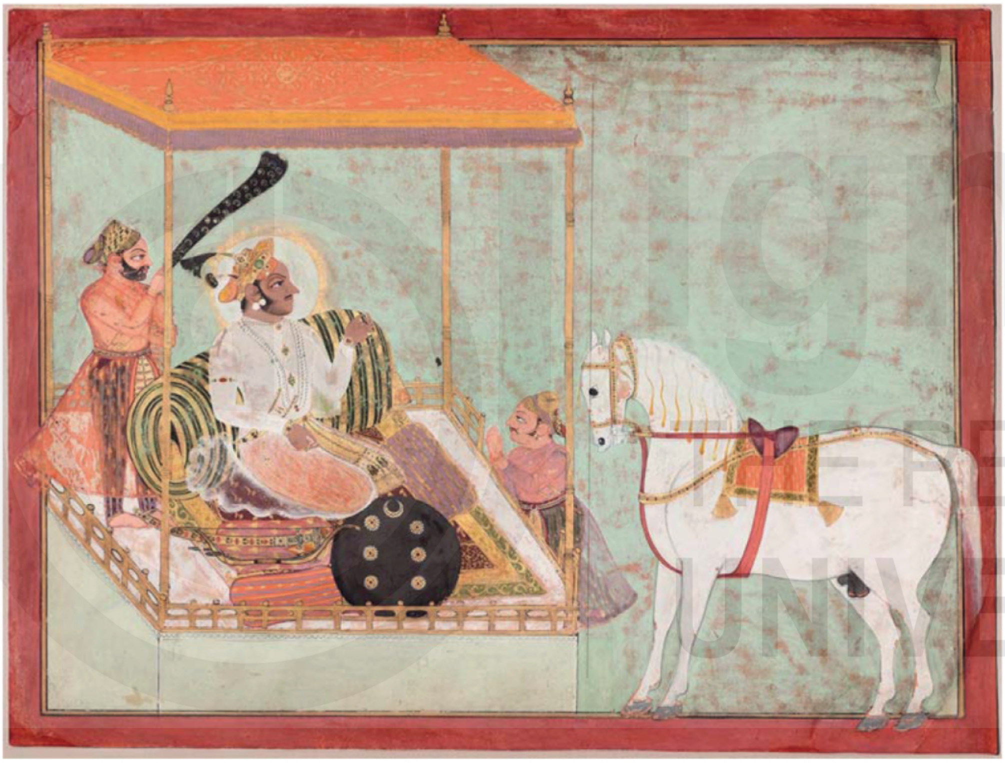

चित्र-12: घोड़े को निहारते हुए कोटा के राव अर्जुन सिंह, ca. 1720, Museum of Fine Arts Boston, Gift of John Goelet, 66.147.

चित्र 12 में अर्जुन सिंह सोने की कशीदाकारी से लदी एक चंदवी के नीचे एक पदस्थल पर बैठे हैं। पूर्व के चित्रों में समान ही ब्रिजनाथ जी की सेवा में एक परिचारक सेवा दे रहा है, जो मोरछाल से पीछे से पंखा झल रहे हैं। एक अन्य व्यक्ति हाथ जोड़ कर अर्जुन सिंह के सामने झुककर खड़ा हुआ है। मौली एटकिन ने कहा है कि अन्त में, कृष्ण और राजपूत की एक सी पहचान इतनी विस्तृत थी कि वे एक दूसरे के समान लगते थे जैसे शीशे के महल में बिना किसी रोक या सीमा के स्पष्ट दिखाता है, ताकि कदाचित लगभग जान बूझकर राजा

[31] Molly Aitken, *The Intelligence of Tradition in Rajput Court Painting* (New Haven and London: Yale University Press, 2010), 251.

[32] For a similar composition which pictures Maharao Bhim Singh and his son Arjun Singh with Brijnathji see *Maharao Bhim Singh of Kota Attending Krishna as Brijnathji*, attributed to the Kota Master, c. 1719-20, Philadelphia Museum of Art, Gift of Stuart Cary Welch, Jr. in memory of William P. Wood, 1997, No. 1997-25-1, https://www.philamuseum.org/collections/634-549.html#object/91404 (Retrieved 10 January, 2019).

को कृष्ण की तरह दिखाता है, ताकि चित्र देखने वाले राजा को ईश्वरीय रूप में देख सके, भक्ति पूर्ण और एक देवता के रूप में साथ–साथ।[33]

राजस्थान के अन्य राजघरानों ने भी अपनी समीपता वल्लभ सम्प्रदाय के साथ घोषित कर दी, और यह सामीप्यता दरबारी चित्रकलाओं में भी परिलक्षित होने लगी। कृष्ण की राजपूत राजाओं से एकनिष्ठता बार–बार दिखने लगी। सवाई जय सिंह (1699–1743) के शासन के दौरान, जयपुर में महल से सटे हवेलीनुमा मंदिर में गोविन्द देव जी की मूर्ति की स्थापना हुई।[34] किशनगढ़ में महाराजा रूप सिंह (1629–43) ने अपने राजघराने को श्री कल्याण राय, जी के नाम पर उन को सौंप दिया, जो सम्प्रदाय के प्रमुख प्रतीकों में से एक थे।[35] उनके पुत्र सावंत सिंह, किशनगढ़ के युवराज, ने तथा उनकी सहचरी ने कृष्ण और राधा के भक्तिपूर्ण भजन तैयार किये, जिनका उपनाम क्रमशः नागरीदास और रसिक बिहारी रखा गया। कृष्ण की कथाओं और नागरीदास जी के व्यक्तित्व का आपसी सम्बन्ध संबंधित काव्य और चित्रों में डाला गया। किशनगढ़ दरबार के चित्रकार निहाल चन्द ने सावन्त सिंह और उनकी सहचरी को अपने चित्रों में राधा–कृष्ण की तरह अलौकिक जोड़े के रूप में (जिसे लोक प्रियनाम बनीठनी दिया गया था) दिखाकर अमरता प्रदान कर दी। सावन्त सिंह के चित्र (चित्र 13) की राधा और कृष्ण युगल जोड़े से (चित्र 14) और राधा कृष्ण प्रेम की नैया में (चित्र 15) की तुलना करने पर पता चल जाता है।

ग्रामीण छवि वाले भगवान के चित्रों से और भव्य सावन्त सिंह के चित्रों से यह चरितार्थ हो जाता है, कि वे एक दूसरे के लिये उदाहरण स्वरूप हैं। आकृति की बनावट में लम्बे और पतले और उपर की ओर मोड़ लेती विशेषता लिये हुए अर्ध–खुली आँखों का दिखाया जाना। सभी चित्रों में, आकृतियों को सुन्दर कपड़े पहनाये हुए व उनमें मूल्यवान रत्नों से किया गया श्रृंगार दिखाया जाता था। प्रेम की नैया में कृष्ण और राधा, ब्रज के बगीचों में किशनगढ़ के परिदृश्य को दरबारी स्वरूप से बदलकर झील के किनारे के तटबन्ध और उनमें सुयोजित बाग बगीचे तथा संगमरमर के मंडप में परिवर्तित कर दिया।[36]

चित्र-13: किशनगढ़ के महाराजा कुमार सावंत सिंह का पोर्ट्रेट, 1745, Harvard Art Museums/Arthur M. Sackler Museum, Gift in gratitude to John Coolidge, Gift of Leslie Cheek, Jr. Anonymous Fund in Memory of Henry Berg, Louise Haskell Daly, Alpheus Hyatt, Richard Norton Memorial Funds and through the generosity of Albert H. Gordon and Emily Rauh Pulitzer; formerly in the collection of Sturart Cary Welch, Jr., 1995.114. Source: https://hvrd.art/o/310428

---

[33] Ibid.

[34] In the kingdom of Jodhpur Maharaja Vijai Singh (r. 1752-53 & 1772-93) was initiated in the Vallabh Sampradaya in 1765. He commissioned an illustrated *Bhagavata Purana*, *Krishna-lila* and paintings from him reign capture him at worship. When Maharaja Man Singh came to the throne in 1803, he pledged his allegiance to the Nath Sampradaya and credited his accession to the intervention of the immortal Nath yogi, Jallandarnath. Painting after painting pledges Man Singh's devotion to the Naths and Jodhpur paintings from the beginning of the nineteenth century become exponents of Nath philosophy. See Debra Diamond, Catherine Glynn, Karni Singh Jasol, *Garden & Cosmos: The Royal Paintings of Jodhpur* (Washington DC, Freer Gallery of Art and the Arthur M. Sackler Gallery, 2008).

[35] Ibid., 248.

[36] For high resolution zoomable image of this painting see https://artsandculture.google.com/asset/radha-and-krishna-in-the-boat-of-love/FgEEOnrrqsn9OA (Retrieved 15 January, 2019).

चित्र-14: कृष्ण और राधा, किशनगढ़, c. 1750 c. 1750 © Philadelphia Museum of Art, Purchased with the Edith H. Bell Fund, 1984-72-1

चित्र-15: प्रेम की नाव में राधा और कृष्ण, निहालचंद, 1755, National Museum New Delhi. Source: Wikimedia Commons

आश्चर्यजनक रूप से, जबकि हम मध्य सत्रहवीं शताब्दी से 19वीं शताब्दी तक कोटा चित्रशालाओं की कार्यवाहियों की गति का अंदाज ले सकते हैं, हम उन लोगों के बारे में बहुत कम जानकारी पाते हैं जिन्होंने इन कला–चित्रों को बनाया। चित्रों में दिये गये अंकन से केवल कुछ ही कोटा के चित्रकारों का नाम सामने आ पाता है जैसे शेख ताजू, गुमानी और नीजू। अधिकतर मामलों में कला इतिहासकारों ने इनको छद्म नाम ही दिया है। यह चुनौती केवल कोटा के लिये ही नहीं है, बल्कि भारतीय चित्र कला के अध्ययन में सामान्य रूप से रही है। बहुत कम अभिलेख भारतीय चित्रकला से सीधे जुड़े है। यह चित्रों के लिये सामान्य बात नहीं है कि उनमें उनके निर्माण की तिथि या स्थान भी पुष्पिका दी गई हो। यहाँ तक कि जब चित्रकारों के नाम एकत्रित किये गये उनके जीवन सम्बन्धी कोई विवरण उपलब्ध नहीं हो सके। ज्यादा सूचनायें उनके सरंक्षकों के बारे में उपलब्ध हैं, इसीलिये भारतीय चित्रकला के बारे में पारस्परिक लेखों में उनके संरक्षकों, जो अधिकतर राजा हुआ करते थे, के बारे में ही बताया गया है। चित्रशालाओं की गतिविधियों के बारे में तो कुछ भी ज्ञात नहीं है। चित्रशालाओं की रोज–रोज की गतिविधियाँ, चित्रकारों की जिन्दगी के बारे में, और उन जगहों पर जहाँ चित्रकारी की जाती थी, दरबार के संस्कार, ऐसे कुछ विषय हैं जिनमें अभी शोध किया जाना आवश्यक है। हमारे शोध में जो खालीपन है इसे भरने के लिये कुछ, विद्वानों ने कुछ अपरंपरागत कला इतिहास के स्रोतों का भी सहारा लिया है जैसे धार्मिक स्थलों/तीर्थ स्थलों पर रखे गये दस्तावेज और प्रशासनिक और ऐतिहासिक अभिलेखों में संबंधित सूचना की तलाश करना।

बोध प्रश्न 1

1. राजस्थान के शाही घरानों में मुगल शैली की चित्रकला किस प्रकार ले जाई गई?

....

....

....

....

2. बूंदी और कोटा राज्यों में चित्रकारिता को मिले संरक्षण पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

....

....

....

....

15.3 पहाड़ी चित्रकला–पंजाब के पर्वतीय क्षेत्र

पहाड़ी क्षेत्र में चित्रकला के अध्ययन के लिये, बी.एन. गोस्वामी अपना ध्यान सरंक्षक से हटाकर चित्रकार पर लाते हैं। वह चित्रकला की शैलियों के क्षेत्रीय और भौगोलिक वर्गीकरण को त्याग देते हैं और परिवार को महत्व देते हैं, जहाँ कलाकारी का ज्ञान पिता से बेटे को मिला और शैली का संग्रहण हुआ। गोस्वामी कहते हैं, ''शैली या मुहावरों का वर्गीकरण राजाओं द्वारा किये जाने पर कभी–कभी राजनैतिक सीमाओं को जरूरत से ज्यादा महत्व मिलता है, जो वास्तव में बहुत सतही होते थे, और यह कल्पना करते थे कि कलाकार के प्रवास की सम्भावनाओं की पूरी स्थिति को हमेशा ध्यान में नहीं रखा गया, जिसके सम्बन्ध में हमारे पास पूरे सबूत हैं। चित्रकला में एक परिवार के पास अपनी कलम होती है, उसी प्रकार जैसे संगीत में अपनी शैली होती है, संगीतकारों का घराना होता है।''[37] हडौती क्षेत्र में, बूंदी में, और कोटा में चित्रकला के इतिहास से भी संकेत मिलता है कि कलाकार घूमते रहते थे और हम यह देख पाते हैं कि किस प्रकार दरबार से दरबार तक चित्रकला की शैलियों घूमती रहती थीं। इसी प्रकार पहाड़ी पर्वतीय क्षेत्र में, कलाकार गुलेर से चम्बा, जसरौता और बसोहली तक यात्रा करते थे।

पहाड़ी (शाब्दिक अर्थ 'पर्वतों से'') चित्रकला का तात्पर्य हिमालय पर्वत क्षेत्र की चित्रकला से है, क्षेत्र जो आज के वर्तमान उत्तराखण्ड राज्य से होता हुआ जम्मू और हिमांचल प्रदेश के कुछ हिस्से तक फैला है। ऐतिहासिक प्रमाणों के अनुसार यह क्षेत्र 35 राजघरानों में विभाजित था। कुछ राजघराने एक बड़े भू–भाग तक फैले हुए थे (जैसे कागड़ा, चम्बा और कुल्लू), अधिकतर राजघराने सामान्य स्वरूप के थे, (जैसे नुरपुर, मण्डी) जबकि कुछ तो 16 किमी. तक सतही क्षेत्र के बहुत छोटे भी थे, (जैसे जसरौता जम्मू क्षेत्र में)[38], हालांकि चित्रकला की गुणवत्ता और संख्या इस बात पर निर्भर नहीं थी कि कोई राज भौगोलिक और आर्थिक दृष्टि से कितना बड़ा है, जो बात सामने आयी वह यह कि केवल एक दो चित्रकारों से सजी चित्रशालायें प्रोत्साहन देने वाले और अच्छे कार्य की प्रशंसा करने वाले संरक्षकों के कारण खूब निखरे। उदाहरण स्वरूप, राजा बलवन्त सिंह (मृ. 1793), जो छोटे से राज्य जसरौटा के शासक थे, के लिये चित्रकार नयनसुख ने शुद्ध और सरल चित्रकारी की। 20 सालों से भी अधिक समय तक, चित्रकार नयनसुख ने राजा बलवन्त सिंह को अपने अभूतपूर्व अनौपचारिक चित्रों में असाधारण आत्मीयता से चित्रित किया। चित्रों में राजा को नाई द्वारा

[37] B.N. Goswamy, "Pahari Painting: The Family as a Basis of Style", *Marg*, Vol. XXI, September, 1968, No.4, 17.

[38] John Seyller, Jagdish Mittal, *Pahari paintings in the Jagdish and Kamla Mittal Museum of Indian Art* (Jagdish and Kamla Mittal Museum of Indian Art, Hyderabad, 2014), p. 5.

अपनी दाढ़ी की छटनी कराते हुए, गर्मियों की रात्रि में तम्बू के नीचे पत्र लिखते हुए, या महल की छत पर अकेले खड़े हुए दिखाया गया।[39]

नयनसुख चित्रकार इस बात के लिये उल्लेखनीय है कि उसकी सूक्ष्म दृष्टि, भावपूर्ण चित्रांकन मानव स्वभाव को लगभग पूर्णता से ग्रहण करते हैं। (चित्र सं. 16) में'' बलवन्त सिंह के लिये गायिका लाडबाई गाते हुए'' नयनसुख रचना को दो भागों में में बाँटते हैं। दाहिनी और राजा बलवन्त सिंह हैं जो हुक्का पी रहे हैं, एक लालिमा लिये हुए मसनद और उसी रंग के कालीन पर।

चित्र-16ः गायक लडबाई बलवंत सिंह के लिए गाती हुई, नैनसुख, c. 1745-50 © The Trustees of the British Museum, 1948, 1009,0.130

उनका ध्यान आकर्षित होता है संगीतकारों के एक दल की ओर जो उनके सम्मुख कार्यक्रम देने आये हैं। दो औरते हैं और उनके साथ तीन पुरुष संगीतकार हैं। नयनसुख का उत्कृष्ठ कौशल था कि प्रत्येक व्यक्ति की विशेष आकृति और उनके स्वरूप में मानवीय चरित्रों को उकेरना। इसे जानना आसान है कि तानपुरे पर संगीत दे रही महिला एक कम उम्र की गायिका है जो बड़े मनोयोग से संगीत की प्रस्तुति दे रही है। उसके दाहिनी ओर एक प्रौढ़ महिला है जो अपने हाथों को मोड़ कर अपनी गोद में रखे हुए शान्त हैं। उन औरतों के पीछे, हम एक दुबले, पतली गर्दन वाले पुरुष को देखते हैं जिसके पास एक तार वाला यंत्र है। उसके बाद एक दाढ़ी वाला गहरे रंग का ढोलक वाला—ड्रम बजा रहा है। एक हलका पीला जामा पहने व्यक्ति है[40] जो असामान्य प्रकार का दो नली वाला आंचलिक यंत्र बजा रहा है। राजा की मृत्यु के बाद नयनसुख ने सोहली के राजा अमृतपाल (1757—1778) के साथ कार्य करना जारी रखा। हालांकि, नयनसुख के इस कार्यकाल में चित्रकार ने धार्मिक विचार युक्त आदर्श विषयों पर कविताओं पर कुछ गंभीर चित्र बनाये।

---

[39] For an exhaustive study on Nainsukh see, B.N. Goswamy, *Nainsukh of Guler: A Great Indian Painter from a Small Hill-State* (Artibus Asiae, Switzerland, 1997).
[40] Ibid., p. 128.

नयनसुख (नैनसुख) के प्राकृतिक चित्र उनका सूक्ष्मतम विवरणों पर ध्यान दिया जाना मुगल शैली से ही अधिकांशतः लिया गया। लेकिन पहाड़ी चित्रकारों ने इसको अपनाया। कला इतिहासकार अब यह मानते है कि पंजाब के पर्वतीय क्षेत्र की आरंभिक काल की चित्रकारी के जो चित्र हैं, मुगल शैली से प्रभावित चित्र हैं, और वर्णनात्मक चित्र 17 वीं शताब्दी के प्रथम अर्द्ध भाग से हैं।[41] यह स्वभाविक है कि स्वदेशीय परम्परा में चित्र 16वीं शताब्दी में भी तैयार किये जा रहे थे, लेकिन हमारे पास पहले किये गये कार्यों के बारे में कोई प्रमाण नहीं है। यह स्वीकार किया गया है कि मुगल कलाकार संभवतः पहाड़ी राज्यों की ओर 1585 और 1598 के तुरन्त बाद, जब अकबर ने मुगल राजधानी लाहौर बना ली, प्रवास कर गये। यह सर्वविदित है कि अकबर की मृत्यु के तुरन्त बाद, उसके बेटे और उत्तराधिकारी जहाँगीर ने शाही चित्रशाला को आकार में जबदस्त तरीके से छोटा कर दिया और बहुत से चित्रकार बिना संरक्षण छोड़ कर चले गये। वो सब कार्य की तलाश में दूसरे क्षेत्रीय राजघरानों में चले गये, और बहुत से पहाड़ी राजदरबारों और राजस्थानी में चले गये। यह भी पता चलता है कि जहाँगीर ने पंजाब के मैदानी भाग के पूर्वी किनारे पर लाहौर में समय–समय पर दरबार लगाये, जो पर्वतीय राज्य के करीब पड़ता है। 1615 ई. तक मुगलों से प्रशिक्षण प्राप्त चित्रकार संभवतः नुरपुर में और बाद में मंडी और विलासपुर में प्रवास कर कार्य करते रहे।[42]

1630 और 1670 के बीच में, मुगल शैली में तैयार किये गये चित्र बड़ी संख्या में मंडी के दरबार में बनाये गये, जिनको राजा हरी सिंह सेन (1607–64) और उनके पुत्र सूरज सेन (1623–37) का संरक्षण प्राप्त हुआ । जहाँगीर नामा में मुगल शहंशाह ने यह अंकित किया कि 1622 और 1624 के बीच, जहाँगीर पर्वतीय दरबारों के नज़दीक ठहरे हुए थे, और बहुत से स्थानीय राजाओं ने उनके ठहरने के स्थान का दौरा किया। यह सम्भव है कि हरी सिंह और उनके चित्रकारों को कई अवसरों पर मुगल चित्रों को देखने का अवसर मिला। संभवतः राजा स्वयं बहुत सी मुगल शैली की चित्रकलाओं को अपने साथ दरबार लाये और मुगल चित्रकार को अपने मातहत कार्य दिया।[43]

चित्रों के इस समूह में जटिल रंगों का प्रयोग किया गया, हल्के रंगों का प्राकृतिक रचना और वास्तविक दिखती मानवकृतियाँ को उकेरने में। उदाहरण के लिये, रामायण की चित्र श्रृंखला में विवाह के दृश्य (चित्र 17) में उल्लिखित सभी विशेषताएँ दिखाई देती हैं।

महल के आँगन में जब विवाह सम्पन्न होता था संभवतः जनानखाने का प्रवेश प्रतिबंधित होता था, जिसके लिये दाहिनी ओर एक द्वार रहता था। नारंगी चमकते–जामे में सजे–धजे, गहरे

---

[41]Cummins, *Indian Painting*, 166. Also see Catherine Glynn, "The Early Master at the Court of Mandi" in Milo C. Beach, Eberhard Fischer, B.N. Goswamy (eds.) *Masters of Indian Painting*, Vol I., 1100-1650(ArtibusAsiae Publishers, 2011), p. 411.

[42] John Seyller, Jagdish Mittal, *Pahari Drawings in the Jagdish and Kamla Mittal Museum of Indian Art* (Jagdish and Kamla Mittal Museum of Indian Art, Hyderabad, 2011), p. 11.

[43]Glynn, "The Early Master at the Court of Mandi", p. 413. For a Mughal-inspired portrait of Hari Sen, see *Raja Hari Sen of Mandi (r. 1604-1623-37)*, c. 1650, Northern India, Himachal Pradesh, Pahari Kingdom of Mandi, Page: 31.8 x 17.8 cm. Purchase and partial gift from the Catherine and Ralph Benkaim Collection; Severance and Greta Millikin Purchase Fund 2018.96, https://www.clevelandart.org/art/2018.96 (Retrieved 15 August 2021.)

चित्र-17: विवाह समारोह, रामायण का फोलियो, ca. 1640-50 © Freer Gallery of Art. Purchase from the Catherine and Ralph Benkaim Collection — Charles Lang Freer Endowment, F2017.13.2 https://asia.si.edu/object/F2017.13.2 (accessed 16 August 2021).

हरे रंग का शाल और सुनहरा ताज पहने वर तीन बार–दिखाई देते हैं। पहली बार महल के फाटक पर, विवाह स्थल पर पहुँचने पर, जहाँ उसका स्वागत महिलाओं द्वारा किया जाता है। दूसरी बार बीचों–बीच मंडप पर, और अन्त में तीसरी बार ऊपर बायें किनारे पर एक छोटे से कमरे में। दोनों ही मामलों में वह विवाह सम्बन्धी क्रियाकलापों में गहराई से रूचि लेता दिखाई देता है, जो क्रियायें गंभीर दिखने वाले पुजारी द्वारा कराई जाती हैं। पारम्परिक लाल रंग के वस्त्रों में सजी छोटी सी दुल्हन फर्श पर नजरे गड़ाये, एक फूस की छत के नीचे खड़ी होती है। वह अपनी चाचियों, बहनों और मित्रों से घिरी रहती हैं, जो उसे मण्डप की ओर ले जाती है। वह संयोजन छोटे, सावधानी से बनाई गई आकृतियों और मुगल शैली से प्रभावित वस्त्रों जिनमें जटिल विस्तृत चित्रकारी की गई होती है से भरा हुआ है। पीले हरे रंग की पृष्ठभूमि, आसमान में ऊँचाई पर छोटे–छोटे परिन्दे और जमीन पर सरू के वृक्ष लगे होते हैं। वे सब मुगल चित्र–कला की शैली के परिचायक होते हैं।[44] 1660 के बाद, एक साहसिक अपरिष्कृत शैली को मण्डी में पसंद किया गया, जब राजा सिधसेन (1684–1727), जो शिव के अनन्य भक्त थे, के लिये कई चित्र उक्त शैली में बनाये गये।(चित्र 18)[45]

चित्रकारों का एक समूह जिनका आरंभ गुजरात में हुआ था, 1625 के लगभग राज्य चम्बा पहुँचा। जगदीश मित्तल लिखता हैं कि जब वह हीरालाल को मिलने गये, जो चम्बा में चित्रकार परिवार का वंशज था, उसने बताया कि उसके पूर्वज गुजरात से थे, और उन्होंने लाहौर क्षेत्र से होते हुए चम्बा में प्रवास किया था। हीरालाल के पारिवारिक संग्रह में सत्रहवी शताब्दी के आरंभिक वर्षों से जुड़ी हुई चित्रों की उपलब्धता मुगल चित्रकला और रेखाकनों का सम्बन्ध पर्वतीय राज्यों में मुगल दरबार के चित्रकारों से जोड़ती है।[46]

---

[44] Ibid., pp. 411-415.

[45] For other portraits of Sidh Sen see, Goswamy & Fischer, *Pahari Masters,* pp. 190-209. Also see Seyller and Mittal, *Pahari Paintings,* pp. 86-105.

[46] Seyller and Mittal, *Pahari Drawings,* pp. 11-12.

चित्र-18: शिव के अवतार के रूप में मंडी के राजा सिद्ध सेन, ca. 1725, Museum of Fine Arts Boston, Keith Mcleod Fund, 2001.137.

बसोहिली के राज दरबार में 1660 के आसपास, जिसे विद्वानों ने पहाड़ी चित्रकला के सबसे पहले केन्द्र के रूप में पहले समझा था, एक शैली जो मुगल चित्रकला की प्राकृतिक परम्परा से पूर्णतः भिन्न थी, प्रचलित हुआ करती थी। इस समय दो श्रृंखलाओं तांत्रिक श्रृंखला (चित्र 19) और रसमंजरी में दिखती बसोहिली चित्रकला, गहरे प्राथमिक रंग, विशेष शैलीगत आकृतियाँ सामान्य से बड़े आकार और पान के पत्तों का अलंकृतीकरण के किये प्रयोग से चिन्हित होती है।

चित्र-19: एक तांत्रिक देवी श्रृंखला से, ऋषि च्यवन द्वारा देवी की पूजा की जाती है, ca. 1660-70, Basohli © Freer Gallery of Art, Purchase — Charles Lang Freer Endowment,F1997.8. https://asia.si.edu/object/F1997.8/(accessed 16 August 2021)

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

विद्वान सहमत हैं कि देवी शृंखला और आरंभिक रसमंजरी (1660–70) संभवतः एक ही चित्रकार का कार्य था, जिसे कृपाल कहा जाता था, जो छोटे से नुरपुर राज का निवासी था, जो बसोहिनी से रावी नदी के दूसरी ओर स्थित था। ऐसा माना जाता है कि कृपाल का पुत्र, देवीदास बसोहिली के दरबार में नियुक्ति पा गया था, जहाँ उसने रसमंजरी की दूसरी शृंखला 1695 में पूर्ण की। हम जानते हैं कि कृपाल के पौत्र और देवीदास के पुत्र भी चित्रकार थे, जिनकों गोलू कहा जाता था, जिन्होंने पारिवारिक चित्रशाला में स्थापित परम्परागत चित्रकला का अनुसरण किया।[47]

चित्र सं 19 में च्यवन नामक चिकित्सक को ध्यान लगाये जाने के कारण देवी भद्रकाली के दर्शन हुए, जो एक शव पर बैठी हुई थी। पीले वस्त्रों में सजी हुई और विष्णु जी से सम्बद्ध लम्बी माला, और विष्णु जी के प्रतीक चिन्ह– चक्र, गदा, शंख और पद्म भी उपस्थित थे। हरे भरे पत्ते काल्पनिक वृक्षों के साथ, छोटे फूलों वाली कलिकायें यह संकेत देती है कि दृश्य किसी जंगल का है। शृंखला की अन्य चित्रकला, देवी को अपने प्रतिष्ठित स्वरूप में दिखाती हैं, जिसमें कोई भक्त नहीं होतां। ऐसा लगता है कि इस प्रकार के चित्र भक्त की पूजा (ध्यान) में मदद करने के लिये एक साधन की तरह बनाये गये हैं।[48]

18वीं शताब्दी के प्रथम अर्धभाग में पर्वतीय क्षेत्र में चित्रकला की क्रियात्मकता गुलेर के चित्रकारों के एक प्रसिद्ध परिवार के प्रभाव में रही है। पंडित सेऊ के समय से आरंभ हुआ पारिवारिक चित्रशाला का यह तरीका कई पीढ़ी तक लगातार चलता रहा। उसके दोनों बच्चे मानाकू और नैनसुख बहुत ही उर्वर चित्रकार थे। हमने नैनसुख की कलाकारी पहले देख ही ली है। मानाकू लगभग 1760 तक क्रियात्मक रहा और रामायण, गीतगोविन्द, देवी माहात्म्य, भागवत पुराण व अन्य कई शृंखलाओं के अद्भुत चित्रों का रचयिता रहा है। मनाकू के बेटे फत्तू और कुशल भी जाने माने चित्रकार थे। इसी प्रकार हम जानते हैं कि नैन–सुख के चार बेटे थे–काम, गौधू निक्का और राझाँ। मानक ओर नैनसुख के बाद की पीढ़ी पर्वतीय क्षेत्र के कई राजघरानों के लिये अठारहवीं शताब्दी और 19वीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों तक कार्य करती रही।[49]

बोध प्रश्न 2

(1) चित्रकला की पहाड़ी परम्परा से जुड़े परिवारों के चित्रकारों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

....

....

....

....

[47] B.N. Goswamy, Eberhard Fischer "Kripal, Devidasa and Golu of Nurpur", *Masters of Indian Painting*, Vol II., 1650-1900 (Artibus Asiae Publishers, 2011), pp. 439-458.

[48] B.N. Goswamy, Eberhard Fischer, *Pahari Masters: Court Painters of Northern India* (Artibus Asiae Publishers & Museum Reitberg, Zurich, 1992), p. 38.

[49] For a brief overview of the careers of Manaku, his sons and grandsons see, B.N. Goswamy, Eberhard Fischer, "Manaku" and "The First Generation after Manaku and Nainsukh of Guler", *Masters of Indian Painting*, Vol II., pp. 641-658 and 687-718.

(2) 17वीं शताब्दी में बसोहिली और मण्डी की चित्रकला में क्या असमानतायें थी?

....

....

....

....

15.4 दख्खिन में चित्रकला का संरक्षण

पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में बहमनी राज्य के बिखरने के बाद, बीजापुर, गोलकुण्डा, अहमद नगर, बीदर और बेरार के दरबार स्वतंत्र सल्तनत की तरह स्थापित हो गये। दख्खिनी बंदरगाह पूर्वी और पश्चिमी व्यापार मार्गों को जोड़ते थे। लम्बी समुद्र तटीय सीमा ने समुद्री अर्थव्यवस्था को तेजी दी, और दक्षिण दूर–दराज के देशों से व्यापारिक सम्बन्ध बना सका। सभी कार्यशालाओं में, इस प्रकार के उत्पाद तैयार किये जाते थे जो दक्षिण–पूर्व एशिया, परशिया, यूरोप के ग्राहकों के पसन्द के अनुसार होते थे।[50] दक्षिण के सल्तनतों ने एक अनोखी प्रकार की कला की शब्दावली को चित्रों में डाला और वस्त्रों में चित्रित किया, धातु के बर्तनों, पत्थर पर उकेरना शुरू किया। दक्षिण की कला को अक्सर काव्यात्मक और आश्चर्य भरा हुआ स्वीकार किया गया।

दक्षिण समाज की नस्लीय संरचना ने महानगरीय और बहु–सांस्कृतिकवाद को दक्षिण की कला, साहित्य, धर्म और भाषा को प्रतिबिम्बित करते हुए पोषित किया। दक्षिण के सुल्तान शिया मुसलमान थे और ईरानी और तुर्की शासकों के बहुत करीबी होने के लिये जाने जाते थे। उनकी कला साहित्य (काव्य) और संगीत के संरक्षण के तरीकों को अपनाते हुए देखे गये। लगातार मध्य पूर्व के सम्पर्क में रहने से तुर्की, परशिया और अरब से आने वालों का तांता रहा। सुल्तानों की सम्पत्ति और उनकी उदारता से आकर्षित होकर, कवि, कलाकार, व्यापारी, सैनिक और सूफी सन्त दक्षिण प्रवास कर गये। अफ्रीकी संभ्रान्त लोग योद्धाओं के रूप में आये और प्रधानमंत्री तथा जनरल के पद तक पहुँच गये। ये समाज दक्षिण की स्थानीय जनता के साथ मिलकर इस क्षेत्र के विभिन्न संस्कृतियों की मिलन–बिन्दु बन गये।

1605–1750 का काल दक्षिणी कला को मुगलों के साथ तल्ख सम्बन्धों के कारण आकार दे गया। उत्तर भारत में अपना साम्राज्य स्थापित कर लेने के बाद अकबर ने 16वीं शताब्दी के अन्तिम दशक में अपना साम्राज्य दक्षिण में भी बढ़ाने पर विचार किया। बुरहान पुर को मुगल की चौकी के रूप में स्थापित किया गया और यह 1609 के बाद मुगलों के दक्षिणी राज्य की राजधानी बन गई। इससे अन्तर्सास्कृतिक आदान–प्रदान को बढ़ावा मिला। मुगल चित्रकला में दक्खिन के रूप रंग दिखने लगे। इसी तरह दक्षिण चित्रकला के मुगल शैली का प्रभाव पड़ा। उदाहरण के लिये, मुख्य चित्रकार फारुख हुसैन (जिन्हें फारुख बेग भी कहा गया) की आजीविका की यात्रा यह बताती है कि उस समय दक्खिन की संस्कृति पर्शियन –इस्लामिक के वृहत क्षेत्र से जुडी हुई थी।

मूलरूप से सिराज का रहने वाला, फारूख हुसैन कार्य की तलाश में खुरासान मसहद–पुस्तकालय–चित्रशाला में प्रवास कर गया और फिर काबुल चला गया, जहाँ उसने अकबर के सौतेले भाई मिर्जा हाकिम के लिये चित्र बनाये। 1585 में, यह चित्रकार अकबर

[50] Kavita Singh (ed.) *Scent upon a Southern Breeze: The Synaesthetic Arts of the Deccan* (Mumbai: Marg Publications, 2018), 9.

की सेवा में आ गया। मुगल चित्रशाला में अर्द्ध–दशक तक कार्य करने के पश्चात् फारुख हुसैन बीजापुर प्रवास कर गया, और वहाँ सुल्तान आदिल शाह द्वितीय का (1550–1627) प्रधान चित्रकार बन गया (चित्र 24)।[51] 1609 तक, वह फिर से मुगल बादशाह जहाँगीर की सेवा में आ गया (1605–1627)। अन्य चित्रकारों जैसे चित्रकार मोहम्मद अली का कार्य काल भी इसी गति चक्र की तरह रहा। कदाचित, ईरान में जन्में, मोहम्मद अली बीजापुर गये, और 1590 के लगभग जहाँगीर के मातहत (1600–1620) चित्रकारी करते रहे। फारुख हुसैन के पदचिन्हों पर करीब से चलने वाले मोहमद अली के काम में परशिया के विषय, दक्षिणी स्वरूप और रंग तथा मुगल शैली की आकृतियों का विशिष्ट मेल दिखाई देता है।[52]

दक्षिण का प्रभाव उन राजाओं द्वारा राजपूतों के दरबार तक पहुँचा, जो कई वर्षों तक दक्षिण में मनसबदार रहे। उदाहरण के लिये, चित्रकलायें और हस्तलिखित अभिलेख को देखकर पता चलता है, जो बीकानेर के राजा अनूप सिंह युद्ध में जीत के साथ लूट कर घर लाये गये।[53] इसी प्रकार पुस्तक 4 (किष्किंधा काण्ड) और पुस्तक 5(सुन्दर काण्ड) प्रसिद्ध रामायण जो मेवाड़ के राजा महाराणा जगत सिंह–प्रथम (1607–52) के लिये, 1650 के आसपास चित्रित की गई, यह बताती है कि चित्रकार और उनकी कला कृतियाँ राजस्थान और दक्षिण के मध्य आती जाती रहीं। चित्र सं. 20 में क्रोध से भरे हुए राम परासरवन पर्वत की एक गुफा में कमल आधार पर पैरों को मोड़ कर बैठे हुए है, जहाँ वे और उनके भ्राता लक्ष्मण ने वर्षों ऋतु व्यतीत की। राम लक्ष्मण से किष्किंधा जाने के लिये कहते हैं, सुग्रीव को उसका वचन याद दिलाने के लिये कि उसने सीता की खोज करने में मदद का वचन दिया था। दाहिनी ओर लक्ष्मण किष्किंधा की यात्रा पर जाने के लिये निकलते हैं। दोनों भाइयों ने दक्षिणी ढंग से कीमती सुसज्जित दुपट्टे पहने हुए हैं जिनको उन्होंने अपने ऊपरी भाग में डाला हुआ है। अलग–अलग रंगों का प्रयोग चित्र में हरे, बैंगनी और पीले एक दूसरे के सामने किया गया जो दक्षिणी चित्रकला की याद ताजा करती हैं। परसीनेट पत्थर, बादलों की चाइना की किस्में और गुलाबी लिलाक के लिये वरीयता कलाकार/चित्रकार की दक्षिणी अभ्यास की सूचना देती है।

चित्र-20: राम प्रस्रवण पर्वत पर बैठते हैं और लक्ष्मण को किष्किंधा जाने के लिए कहते हैं कि सुग्रीव को अपना वादा याद दिलाएं। मेवाड़ रामायण, उदयपुर, c. 1653. © The British Library Borrd, Add. MS 15296(2), f. 30r

[51] Keelan Overtan, "Book Culture, Royal Libraries, and Persiante Painting in Bijapur, circa 1580-1630", *Muqarnas* (Vol. 33, 2016), 93.

[52] John Seyller, "Muhammad Ali" in *Masters of Indian Painting* Vol. I, 279-290.

[53] For a painting with a *devanagari* inscription noting that it was captured from the treasury of Adoni in 1691, see cat. 28, "Procession of Sultan Ibrahim 'Adil Shah II" in Navina Najat Haidar and Marika Sardar, *Sultans of Deccan India 1500-1700 Opulence and Fantasy* (New York: Metropolitan Museum of Art, 2015). https://www.metmuseum.org/art/collection/search/454818 (retrieved 12 January, 2019).

दक्षिणी और राजपूती कथा का संगम 'रागमाला' समूह में भी दिखाई देता है, (शाब्दिक रूप में जिसे संगीत की माला कह सकते हैं); यह 36 कलाकृतियों/चित्रों की एक श्रृंखला है, जो कविता और आकृतियों के द्वारा संगीत के भाव जगाती है और जो 16वीं शताब्दी के अन्त में चित्रित की गई (चित्र 21)। यद्यपि चित्रों की उत्पत्ति का समय सुनिश्चित नहीं किया जा सकता, परिस्थितियों के प्रमाण इसे उत्तरी दक्कन (दक्खिन) से जोड़ती हैं। इनमें से कई चित्र पहले बीकानेर के शाही संग्रहालय में रहे हैं।[54]

चित्र-21: गौरी रागिनी, मल्कोस राग की पहली पत्नी, रागमाला फोलियो, उत्तरी डेक्कन, अहमदनगर (?), 1575-1600, 20.32 x 17.78 cm. © LACMA Bequest of Edwin Binney, 3rd, M.90.141.2

'गुण्डाकारी रागिनी' का एक पृष्ठ जोधपुर संग्रहालय में है।[55] संस्कृत में उकेरी हुई भाषा बताती है कि इसके संरक्षक हिन्दू थे। यह पृष्ठ (चित्र 21) और अन्य समान रचनायें राजपूत राजाओं ने ही निर्देशित की होंगी जो मुगलों के दक्खिन विजय के दौरान की हैं। एक विशिष्ट प्रकार के रंगों के सम्मिश्रण से रची गई शान्त और चमकीले गुलाबी रंगों और स्याह नीले रंग से चित्रित हरा भरा किन्तु सलीकेदार परिदृश्य की रचना प्रमुखता से दिखती है। पेड़ों के तनों से तैयार रचना के केन्द्र में 'गौरी रागिनी', 'टहलती हुई नायिका है, जो आम्र के वृक्ष से फूलों को तोड़ती है, अपनी विश्वसनीय साखियों के साथ। छोटे–छोटे मुख लम्बे शरीर और पतली सी कमर, चित्रित नारी चमकते घाघरे स्कर्ट और चोलियों संग सोने की कशीदाकारी वाली पारदर्शी ओढ़िनियों में दिखाई देती है। कमरबन्द और गुलबन्द के किनारे एक विशेष प्रकार के कोणीय ढंग से चित्रित हैं। गौरी रागिनी का भाव एक नारी द्वारा दाहिनी ओर वीणा

[54] Ibid., 61.

[55] "Page from a Ragamala series: Ragini Gundakari" in Karni Jasol, *Peacock in the Desert: The Royal Arts of Jodhpur, India* (Houston: Museum of Fine Arts Houston, 2018), Cat. 54.

(तार युक्त यंत्र) से उजागर किया जाता है। सुन्दर सुगंध वाली फूलों की बेल, पेड़ के तने के चारों ओर लिपटी हुई आम्र में पत्तों तक जाती है। गौरी फूलों को दोनों हाथों में लेती है और अपनी बायीं ओर कलाई को ऊपर उठाती है, मानों सुगंध की ओर बढ़कर उसको पकड़ना चाहती हो।[56]

बहमनी साम्राज्य से पहला स्वतंत्र निजाम शाही राजवंश था (1490–1636), उनकी राजधानी 'अहमदनगर' चित्रकला के महत्त्वपूर्ण संरक्षकों में से एक केन्द्र रही। 1565 के आसपास ''तारीक–ए–हुसैन शाही' को चित्रित किया गया।

1600 तक, अहमदनगर का बड़ा हिस्सा मुगलों द्वारा अपने वश में कर लिया गया, लेकिन उसके बाद के वर्षों में अपनी छिन गई सीमाओं के अधिकांश हिस्से को पुनः वापस प्राप्त कर लिया गया। सत्रहवीं शताब्दी के प्रथम अर्द्धांश में; सल्तनत मलिक अम्बर नाम के शक्तिशाली प्रधानमंत्री के नियंत्रण में रहा। एक पूर्व अफ्रीकी (हब्शी) किराये का सैनिक मलिक अम्बर बहुत ही चतुर रणनीतिकार था, और उसने मुगलों को तीस साल तक दूर ही रखा। दक्षिण से कितने ही चित्र जो अफ्रीकियों के थे मलिक अम्बर और उसके पुत्र फ़तेह खान को शामिल करते हुए यह चित्र अहमदनगर की चित्रकला पर मुग़ल छाप दिखती है। मुग़ल चित्रों की तरह ही उनमें मुखाकृति और पैर और सीने का भाग देखने वाले की ओर होते थे। जबकि अन्य स्वरूप खास तौर पर दक्षिण की तर्ज पर होते थे। महीन श्वेत वस्त्रों में सजे, पिता और पुत्र ने लम्बे समय तक दख्खिनी तलवार को सम्हाले रखा। एक नलीदार बर्तन या बटुआ उनके कमर बन्द (पटका) से लटकता रहता। ये आकार ऊँचाई से आयतन में बड़े और भारी दिखते, परन्तु प्रतिरूपण में उपयुक्त नहीं थे। सूखे हल्के रंगों को प्राथमिकता दी जाती और फतह खान का गुलूबन्द हवा में उसके पीछे की ओर लहराता रहता।

चित्र-22ः एक अफ्रीकी दरबारी का पोर्ट्रेट, संभवतः मलिक अंबर, 17वीं सदी की शुरुआत में, © Museum of Fine Arts Boston Arthur Mason Knapp Fund. 26.8.

चित्र-23ः संभवतः मलिक अंबर, अहमदनगर के पुत्र फतह खान, c. 1610-20 © Museum of Fine Arts VBoston, Ross-Comaraswamy Collection, 17.3103

[56] The synaesthetic shift in Indian art historiography is recent. To understand how images, sound, taste and smell come together in creating an aesthetic experience see essays in Kavita Singh (ed.) *Scent upon a Southern Breeze* (Mumbai: Marg Publications, 2018).

बीजापुर की आदिल शाही राजवंश की स्थापना (1490–1686) युसुफ आदिल खान ने की जो मध्य पूर्व से प्रवासी बन कर आया था। बीजापुर चित्रकला अली आदिल शाह–प्रथम (1558–80) के समय से जानी जाती है, जब 1570 में 'नुजुम–एल–उलुम'' (विज्ञान के सितारे) का चित्रण हुआ था। अक्सर मुगल कला से तुलना करने पर, बीजापुर के चित्र अद्भुत परिदृश्य और आदर्श स्वरूप प्रदर्शित करते हैं। 16वीं शताब्दी के दूसरे भाग के अन्तिम वर्षों में, और सत्रहवीं सदी के आरंभ के अर्द्धभाग में, बीजापुर की चित्रकला इब्राहीम आदिल शाह–द्वितीय (1574–1627) के कार्यकाल में फलीभूत हुई। इब्राहीम आदिल शाह–द्वितीय, संपूर्ण रूप से सौन्दर्यवादी और कुशल संगीतकार थे। कहा जाता है कि उन्होंने 'किताब–ए–नौरस' (नौ रसों की पुस्तक) लिखी, जिसमें उनसठ कवितायें संकलित हैं, इब्राहीम आदिल शाह–द्वितीय स्वयं को एक सच्चा मुलमान और एक हिन्दू भक्त मानते थे। इब्राहीम आदिल शाह–द्वितीय के जमाने में चित्रकारी किताब–ए–नौरस की कविताओं को गुंजाती थीं। (चित्र 24) इस चित्र में फारुख बेग द्वारा बनायी गई आकृति में, बीजापुरी सुल्तान तम्बूरा बजाते हुए दिखाया है, जिनको उसने मोती खान का नाम दिया है। इब्राहीम आदिल शाह के गले में पड़ी रुद्राक्ष की माला, वर्ण संकर धार्मिकता और भक्ति दिखाती है, संगीत और ज्ञान की हिन्दू देवी सरस्वती के प्रति। सभी चित्रित व्यक्ति दख्खिनी किस्म की पगड़ी पहने हैं, जो लम्बी नुकीली है और इसके साथ स्वर्ण से कशीदाकारी किया हुआ चौड़ा वस्त्र भी है। इसकी पृष्ठभूमि में दो हाथी हैं, और एक छोटा शहर का दृश्य है जो संभवतः बीजापुर ही है।

अन्य महत्त्वपूर्ण हस्ताभिलेख जो इब्राहीम आदिल शाह द्वितीय के लिये रेखांकित किये गये, उनमें 'पेम नेम' (प्यार के कानून) (अब जो ब्रिटिश लाइब्रेरी, लंदन के संग्रहालय में हैं) और 'शाहनामा' (बादशाहों की किताब) (अब जो कला के मेट्रोपोलिटन संग्रहालय, न्यूयार्क में हैं)। दोनों ही हस्ताभिलेखों के चित्र परशिया की काल्पनिकता और बीजापुर की संवेदनशीलता का मिश्रण है। भू–परिदृश्य उनके ही समान हैं जो इब्राहीम आदिल शाह–द्वितीय के चित्रों में दिखते हैं। शाहनामा में, आकृतियाँ परशिया के वस्त्रों में स्पष्ट दिखाई देती है जिनकों 16वीं शताब्दी में परशिया के वस्त्रों के आधार पर बनाया गया।[57]

चित्र-24: सुल्तान इब्राहिम आदिल शाह - II तंबूर बजाते हुए, फारुख बेगी, ca. 1595-1600, Bijapur © National Museum, Prague. Source: Wikimedia Commons

[57] For paintings from these manuscripts see Haidar and Sardar, *Sultans of Deccan India*, cat. 29 and cat. 34-37.

इब्राहीम आदिल शाह–द्वितीय के प्रमुख चित्रकारों में से एक अली रजा, सर्वश्रेष्ठ चित्रकार थे। अपनी यथार्थता, आलेखन और तकनीकी कौशल्य के लिये जाने जाते थे। चित्रकार ने ऐसी अन्तर्दृष्टि परक चित्र सुल्तान और उनके दरबारियों के बनाये। चित्र में आकृतियाँ सादी पृष्ठभूमि में खींची गई, जो उनको अलग करते हैं और जिनमें किनारों पर फूलों और पक्षियों की जानकारी के साथ उनकी खूबसूरती बढ़ाई गई है। एक चित्र ''एक मुल्ला'' में सूक्ष्म से सूक्ष्म विस्तार देते हुए (चित्र 25) एक किनारे पर नीले आइरिस के फूल खिलते हुए और तालाब के किनारे पर दो तीतर भोजन की तलाश करते हुए दिखते हैं। ऐसी ही पैनी दृष्टि से तैयार की हुई आकृति एक रूढ़िवादी धार्मिक सभ्रान्त व्यक्ति की रही है। यह सुझाव दिया गया है कि उनके कान्धे पर जो बिना रंग का शाल डाला गया है वह कश्मीरी पशमीना है और हाथ में जो किताब है जिसपे सोने की मजबूत जिल्द चढ़ी है, वह कुरान है। मुल्ला की जागरूक और व्यस्त नजरें बताती हैं कि वह एक बुद्धिमान और जिज्ञासु व्यक्ति हैं।

चित्र-25: मुल्ला किताब पकड़े हुए, बीजापुर, c. 1610, © British Library, J.25, 14. Image in Public Domain. Source : https://blogs.bl.uk/asian-and-african/2019/08/emanating-light-illumination-in-islamic-manuscripts-html

मोहम्मद आदिल शाह (1627–56) और इसके उत्तराधिकारियों के अन्तर्गत आकृतियों के रेखांकन का काम महत्व पाता रहा। मोहम्मद आदिल शाह, इस चित्रकारी में अक्सर अपने शक्तिशाली प्रधानमंत्री इखलास खान (मृ. 1656) से सहयोग पाते रहे। (चित्र 26) शाही हाथी

चित्र-26: हाथी पर सवार सुल्तान मुहम्मद आदिल शाह और इखलास खान, बीजापुर, c. 1645, Collection of Howard Hodgkin. Source: Wikimedia Commons

में सवार इखलास खान, एक कपड़े के टुकड़े को हवा में लहराता है, जो दख्खिन में सार्वभौमिकता का प्रतीक होता है, जबकि मोहम्मद आदिल शाह हाथी को अंकुश से आगे बढ़ाते हैं। एक भव्य प्रभामण्डल जैसा कि मुगल चित्रों के शाही आकृतियों के चारों ओर दिखता है, मोहम्मद आदिल शाह के मुख के चारों ओर दिखाई देता है।

दक्षिण–पूर्व की गोलकुण्डा सल्तनत की नींव कुतुब कुली शाह ने रखी जो पश्चिमी ईरान के क्वारा कोयूनलू जाति के थे। कुतुबशाही शासकों ने ईरान के सफाविद (1501–1722) के साथ कूटनीतिक सम्बन्ध बनाये रखे और परशिया के चित्रकारों और लेखकों को अपने दरबार की ओर आकर्षित करते रहे। 1591 में, मुहम्मद कुलीकुत्ब शाह (1580–1612) ने अपनी राजधानी गोलकुण्डा से हैदराबाद की। सपाट भूमि पर स्थित बिना किसी प्राकृतिक सुरक्षा के, नई राजधानी सल्तनत की शक्ति और वैभव का प्रतीक बनी। वास्तुकला के अतिरिक्त, मुहम्मद कुलीकुत्ब शाह की चित्रकला के प्रति संवेदनायें उनकी कविताओं में प्रदर्शित हो जाती हैं, उनमें से कुछ को रेखाओं में उत्कीर्ण किया गया है, और हस्तलेख में भी संग्रहित किया गया है। मोहम्मद कुलीकुत्ब शाह के रेखांकन चित्रों के समकालीन चित्र सामने नहीं आ सके।

चित्र-27: गोलकुंडा राजकुमार, ca. 1660-70, © MuseeGuimet, Paris, MG 9183. Source: http://www.metmuseum.org/blogs/ruminations/2015/games-of-scale

गोलकुण्डा चित्रों का बार–बार दिखने वाला स्वरूप सत्रहवीं शती के उत्तरार्द्ध से सामने आया वह उनके स्तर में परम्परागत बदलाव का है। एक अज्ञात युवराज के चित्र के रेखांकन में (चित्र 27), चित्र के तल भाग में चारों तरफ का परिदृश्य और आकृतियाँ सूक्ष्मतम पैमाने पर दिखाई जाती थीं। पूरी तरह ध्यान देकर रेखांकित मोर का एक जोड़ा, जो जमीन से ऊपर उठी हुई चट्टान पर बैठा है, एक काले हिरन का जोड़ा और बकरी आसपास दौड़ लगाते दिखते हैं। कमल पुष्प के तल के पास एक व्यक्ति लम्बे भाले और छलावरण परदे से शिकार कर रहा है, और दो लोग बाज पकड़े हुए है।

1686 व 1687 में, मुगल सेनाओं ने औरंगजेब के नेतृत्व में बीजापुर और गोलकुण्डा पर हमला किया और अपने आधीन कर लिया। दोनों ही सीमाओं को मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया और मुगल राज्यपाल के अन्तर्गत रखा गया। चित्रकार उत्तर में राजस्थान के दरबारों में चित्रशालाओं के केन्द्रों में यहाँ तक कि पंजाब के पर्वतीय राज्यों तक चले गये। विषयों और विचारों की दृष्टि से वे दख्खिनी कला से सहयोग करते रहे। जैसे कि पशुओं के समूह या शक्तिहीन नाग साधु के साथ, जो चम्बा की चित्रकला के 1700 तक दिखता है।[58]

[58] John Seyller, "Deccani Elements in Early Pahari Painting", Navina Najat Haidar and Marika Sardar (ed.) *Sultans of the South: Arts of India's Deccan Courts, 1323-1687* (New York: The Metropolitan Museum of Art, 2011), 64-81.

चित्र-28: कॉर्नेलिस वैन डेन बोगेर्डे, का जुलूस, गोलकुंडा, ca. 1687 © David Collection Copenhagen, 42/2008. Source: https://www.davidmus.dk/en/collections/islamic/dynasties/sultanates/art/43-2008-42-2008

दखिखन का सर्वदेशीय संस्कार गोलकुण्डा की चित्रकला में 17वी शताब्दी के अन्तिम वर्षों से दिखता है। दो चित्रों में, एक डच व्यक्ति, जो ईस्ट इण्डिया कम्पनी में सेवारत था, (वी.ओ.सी.) कौरनेलिस वान दी बोगार्डे स्थानीय शासक के रूप में प्रतिनिधित्व करता था। एक चित्र में वह दरबार लगाता है और दूसरे चित्र में वह एक राजकीय जुलूस में एक विचित्र घोड़े पर सवार होता है । (चित्र 28) दोनों ही चित्रों को एक स्थानीय चित्रकार ने कौरनेलिस वान डेन बोगार्डे के लिये बनाया था, जो गोलकुण्डा में डच व्यापारिक पद पर प्रभारी था।

बोध प्रश्न 3

1) दक्खिन की चित्रकला में सर्वदेशीयता को कैसे प्रतिबिम्बित किया गया है?

....

....

....

....

2) उत्तर भारत में बने चित्र और दक्खिन में बनाये गये चित्रों में क्या सम्बन्ध है? उन अन्तरों और प्रभावों को स्पष्ट कीजिए, जो दोनों क्षेत्रों ने एक दूसरे पर डाला।

....

....

....

....

3) इस अवधि के दौरान दक्कन क्षेत्रों में विकसित चित्रों की विभिन्न शैलियों पर एक नोट लिखें।

....

....

....

....

15.5 सारांश

हमने देखा कि विभिन्न प्रकार की चित्रकला की तरीकों को भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में संरक्षण प्राप्त हुआ जो मुगल दरबारों में शाही चित्रों के साथ–साथ चला। राजनैतिक और सामाजिक अन्तरक्रिया से विचारों का आदान–प्रदान हुआ। संरक्षक की महता के साथ–साथ, मुगल शैली के प्रसार में चित्रकारों द्वारा भी मुख्य भूमिका निभाई गई, क्योंकि वे एक राज दरबार से दूसरे दरबार में जाते रहे। जनप्रिय सोच के चित्र जो क्षेत्रीय दरबारों में बने यह बताते हैं कि आकृति रेखांकन के साथ–साथ काव्यात्मक विषय भी चुने गये। अभिव्यक्ति की दो धाराओं माध्यमों के बीच विचारों का जोरदार आदान–प्रदान हुआ। इस इकाई ने इस बात का परीक्षण किया कि राजनैतिक सामाजिक और धार्मिक बदलाव की स्थितियाँ उक्त काल की चित्रकला के सृजन में प्रतिबिम्बित हुई।

15.6 शब्दावली

नुजुम–एल–ऊलुम – विज्ञान के सितारे।

किताब–ए–नौरस – नौ रसों की किताब, उनसठ कविताओं का संग्रह।

अंकुश – हाथी पर नियंत्रण करने वाला यंत्र।

चितेरा या चतेरा – चित्रकार।

रागमाला – 'रागों की माला' चित्रकार द्वारा बनाया गया चित्र, जिसमें संगीत के भाव को व्यक्तित्व प्रदान कर जब कोई राग रंगों, आकारों और आकृतियों के साथ नायक और नायिका का रूप देता है।

पोट्रेट्स – एक चित्र, चित्रकला या तस्वीर व्यक्ति की।

लक्षण – संज्ञानात्मक गुण।

रसिक – विशेषज्ञ।

रूद्रवीणा – तार–युक्त संगीत का यंत्र।

कलम – लेखनी, चित्रकारी की शैली।

मोरछाल – मोर के पंख से बना पंखा।

अजायव – आश्चर्य का भाव।

घरबियाँ – तुर्की परशियन और अरब प्रवासी।

ओढनी – स्वर्ण रचित कसीदाकारी वाला पर्दा।

15.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

(1) 15.2 अंश देखें। यह आशा की जाती है कि उत्तर में यह जाँच की जायेगी कि किस प्रकार मुगल शैली की चित्रकला चित्रकारों के प्रवास और राजनैतिक सम्बन्धों के कारण राजपूती घरानों में पहुँची ।

(2) 15.2 अंश देखें। बूंदी और कोटा की चित्रकला के विभिन्न आयाम उत्तर का मुख्य भाग बनेंगे।

बोध प्रश्न 2

(1) 15.3 अंश देखें। यह आशा की जाती है कि उत्तर यह विश्लेषित करेगा कि चित्रकारों की प्रशिक्षित होने की प्रक्रिया एक पीढ़ी से अगली पीढ़ी की ओर परिवार आधारित रही।

(2) 15.3 अंश देखें। उत्तर इसका विश्लेषण करेगा कि मण्डी की मुगल शैली की स्वाभाविकता और बसोहिली की स्थानीय शैली की परम्परा में क्या अन्तर है।

बोध प्रश्न 3

(1) 15.4 अंश देखें। उत्तर इस बात को स्पष्ट करे कि किस प्रकार दक्खिन समाज की सर्वदेशीयता के रूप चित्रों में दिखाई दिये।

(2) 15.4 अंश देखें। उत्तर इस बात को दिखाये कि मुगल शैली की ओर दक्खिन चित्रकला में क्या अन्तर है और स्पष्ट करे कि किस प्रकार दक्खिन चित्रकला के स्वरूप मुगल और राजपूती चित्रों में दिखाई दिये।

इस इकाई के लिए कुछ उपयोगी अध्ययन सामग्री

Coomaraswamy, Ananda. 1916. *Rajput Painting: Being an Account of the Hindu Paintings of Rajasthan and the Panjab Himalayas from the Sixteenth to the Nineteenth Century, Described in Their Relation to Contemporary Thought with Texts and Translations*. London, New York: Oxford University Press.

Das, Asok Kumar. 2000. "Court Painting for the Amber Ruler, circa 1590-1727" in Andrew Topsfield. ed. *Court Painting in Rajasthan.* Mumbai: Marg Publications, pp.41-56.

Goswamy, B.N. 1986. "Essence and appearance: some note on Indian Portraiture" in Robert Skelton. ed. *Facets of Indian Art.* London: Victoria and Albert Museum.

Goswamy, B.N. 1968. "Pahari Painting: The Family as a Basis of Style", *Marg*, Vol. XXI, September, No.4.

Goswamy, B.N. 1997. *Nainsukh of Guler: A Great Indian Painter from a Small Hill-State*, Switzerland: Artibus Asiae.

Asher, Catherine B. 2008. "Excavating Communalism: Kachhwaha *Rajdharma* and Mughal Sovereignty" in Rajat Datta. ed. *Rethinking a Millennium: Perspectives on Indian History from the 8th to the 18th century, Essays For Harbans Mukhiya.* Delhi: Aakar Books.

Glynn, Catherine & Ellen Smart. 1997. "A Mughal icon re-examined", *Artibus Asiae*, Vol 57, No. 1/2, pp. 5-15.

Glynn, Catherine, 2011. "The Early Master at the Court of Mandi" in Milo C. Beach, Eberhard Fischer, B.N. Goswamy. eds. *Masters of Indian Painting*, Vol I., 1100-1650, Switzerland: Artibus Asiae Publishers.

Diamond, Debra, Catherine Glynn, Karni Singh Jasol. 2008. *Garden & Cosmos: The Royal Paintings of Jodhpur.* Washington: Freer Gallery of Art and the Arthur M. Sackler Gallery.

Khera, Dipti. 2016. "Jagvilasa: Picturing Worlds of Pleasure and Power in 18th-Century Udaipur Painting", in Aitken (ed.) *A Magic World: New Visions of Indian Painting. IMumbai:* Marg Foundation.

Cummins, Joan 2006. *Indian Painting: From Cave Temples to the Colonial Period.*, Boston: Museum of Fine Arts Publications.

Seyller, John. 2011. "Deccani Elements in Early Pahari Painting", Navina Najat Haidar and Marika Sardar. ed. *Sultans of the South: Arts of India's Deccan Courts, 1323-1687.* New York: The Metropolitan Museum of Art.

Seyller, John and Jagdish Mittal. 2014. *Pahari paintings in the Jagdish and Kamla Mittal Museum of Indian Art*, Hyderabad: Jagdish and Kamla Mittal Museum of Indian Art.

Singh, Kavita. ed. 2018. *Scent upon a Southern Breeze: The Synaesthetic Arts of the Deccan.* Mumbai: Marg Publications.

Kavita Singh. 2013. "A Knowing Look: Appropriation and Subversion of the Mughal Idiom in Rajput Paintings of the Eighteenth Century" in Mahesh Sharma, Padma Kaimal. ed. *Indian Paintings: Themes, Histories, Interpretations Essays in Honour of B. N. Goswamy.* Place: Mapin Publishing Pvt. Ltd

Overtan, Keelan. 2016. "Book Culture, Royal Libraries, and Persiante Painting in Bijapur, circa 1580-1630", *Muqarnas*, Vol. 33.

Beach, Milo C. YEAR. "Masters of Early Kota Painting" in Beach, Fisher & Goswamy eds. *Masters of Indian Painting*, Vol. II, pp.466-469.

Beach, Milo Cleveland, 1992. *Mughal and Rajput Painting*, *The New Cambridge History of India.* Cambridge: Cambridge University Press. (Reprint 2002).

Aitken, Molly, 2016. "Introduction", *A Magic World: New Visions of Indian Painting.* Mumbai: Marg Foundation, pp. 10-19.

Aitken, Molly. *The Intelligence of Tradition in Rajput Court Painting.* New Heaven and London: Yale University Press.

Crill, Rosemary. 2000. *Marwar Painting: A History of the Jodhpur Style*. Mumbai: Book House.

Sri Brijnathji hunting at Makundgarh, attributed to the Kota Master, c. 1715, Collection of Gursharan S. and Elvira Sidhu. https://www.metmuseum.org/art/collection/search/76219 (Retrieved 5 January, 2019).

Desai, Vishakha N. 1994. "Timeless Symbols: Royal Portraits from Rajasthan 17th to 19th century", in Karine Schomer. ed. *The Idea of Rajasthan: Explorations in Regional Identity*, Vol.1, Delhi: Manohar and AIIS, pp. 316-342.

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY